कृष्णा सोबती के उपन्यास दिलो-दानिश में स्त्री-पुरुष संबंध

(एम०फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक
डॉ० ओम प्रकाश सिंह

शोध-कर्त्ता
राममूरत

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110 067

1998

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110 067

दिनांक: 21.7.98

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री राम मूरत द्वारा प्रस्तुत "कृष्णा सोबती के उपन्यास दिलो-दानिश में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध" शीर्षक लघु शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्व-विद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है ।

यह लघु शोध प्रबन्ध श्री राममूरत की सर्वथा मौलिक कृति है ।

21.7.98
(डा. ओमप्रकाश सिंह)
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र

(प्रो. मैनेजर पाण्डेय)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र

1998

समर्पण.....

आदरणीय
नानी जी को

भूमिका

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध कृष्णा सोबती के उपन्यास "दिलो-दानिश" पर केन्द्रित है । दिलोदानिश उपन्यास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण उपन्यास है । क्योंकि स्त्री-पुरुष संबंधों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों को इस उपन्यास में कृपा नारायण, कुटुम्बप्यारी और महकबानो के त्रिकोणात्मक संबंधों के माध्यम से अंकित किया गया है । कृष्णा सोबती के पात्रों में सहमति और असहमति की मिली-जुली ठण्डी ताशीर मिलती है जो अक्सर आलोचकों और शोधार्थियों की दृष्टि में नहीं पड़ती है । इसीलिए इस उपन्यास को मैंने शोध कार्य के लिए चुना है । इस उपन्यास में वर्णित स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को यहां आलोचनात्मक दृष्टि से अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है । कृष्णा जी की सभी रचनाएं अपनी विषय-वस्तु में सच्चे अर्थों में सृजनात्मक मूल्य-दृष्टियों से युक्त हैं । वे स्त्री के मुक्त-व्यक्तित्व को उग्र और विध्वंसक होने से बचाती हैं । कृष्णा जी जानती हैं कि स्त्री की हीन दशा के लिए पुरुष वर्चस्व वाला समाज उत्तरदायी है, जो उनकी रचनाओं में परिलक्षित भी होता है । इसके बावजूद उनके नारी पात्र पुरुषों के विरुद्ध कोई परचम नहीं उठाते । क्यों ? क्योंकि स्त्री को भी एक व्यक्ति के रूप में घर का सुख चाहिए, बराबरी और सम्मान के धरातल पर । बस इसी के लिए उनके नारी पात्र अपना तेवर दिखाते हैं । मिलते-जुलते जो कार्य हुए हैं कृष्णा सोबती के रचना संसार का यह पक्ष आलोचकों और शोधार्थियों से अछूता है । अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने इस लघु शोध प्रबंध को चार अध्यायों में विभक्त किया है । प्रथम अध्याय में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों की खोज-बीन की गयी । इस प्रक्रिया में पुरुष और महिला रचनाकारों, दोनों की मुख्य-मुख्य कृतियों को लिया गया है । साहित्य में संवेदना का केन्द्रीय महत्व होता है, इसीलिए जिन पुरुष रचनाकारों की कृतियों में स्त्रियों के मुखर व्यक्तित्व को उभारा गया है, उनकी महत्ता को सहज ढंग से स्वीकार किया गया है ।

दूसरा अध्याय कृष्णा सोबती के रचना संसार पर केन्द्रित है । यद्यपि शोध-प्रबन्ध उपन्यासों पर केन्द्रित है, जैसे "मित्रो मरजानी","सूरजमुखी अंधेरे के",

"डार से बिछुड़ी" [लघु उपन्यास], "ऐ लड़की" [लघु उपन्यास] आदि, किन्तु दृष्टि को साफ करने और उसे विस्तृत रूप से रखने के लिए कुछ कहानियों का चुनाव किया गया है, विशेष कर उनमें, जिनमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की घटनाएं हैं। `जिन्दगी नामा` उपन्यास स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की दृष्टि से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। अत: उसके बारे में बहुत ही संक्षेप में चर्चा की गयी है। इसी प्रकार `यारों के यार` जैसी महत्वपूर्ण किन्तु स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की दृष्टि से गैर-महत्वपूर्ण, जैसी कहानियों को आलोचना से बाहर रखा गया है।

तीसरा अध्याय शोध-प्रबन्ध का प्राण है। यह साध्य कृति `दिलो दानिश` पर केन्द्रित है। इसके दो भाग किए गए हैं। पहले भाग में वकील कृपानारायण और महक बानो के बीच बनते-बिगड़ते संबंधों का अनुशीलन है। दूसरे भाग में घर-गृहस्थी के दायरे में कृपानारायण और उनकी धर्मपत्नी कुटुम्बप्यारी के बीच संबंधों की पड़ताल की गयी है।

चौथा अध्याय `दिलो दानिश` के भाषा शिल्प पर केन्द्रित है। शोध-प्रबन्ध में, शिल्प के बजाए, उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक विषय-वस्तु ही केन्द्रीय महत्व रखती है। अत: शिल्प पर चर्चा अत्यन्त संक्षेप में की गयी है।

`उपसंहार` में पूरे शोध-प्रबन्ध का सारांश प्रस्तुत किया गया है।

यह लघु शोध प्रबन्ध, अपनी अच्छाइयों और कमियों के साथ, मेरे शोध निर्देशक डा. ओम प्रकाश सिंह के सतत प्रयासों एवं सहयोग का फल है। अपनी बात, विचारधारा और दृष्टिकोण को बिना लादे उन्होंने जिस उदारता, खुलेपन और सहृदयता का परिचय दिया है, उसके प्रति केवल आभारी ही रहा जा सकता है।

नि:सन्देह प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में जिस दृष्टिकोण का प्रतिपादन हुआ है, वह जे.एन.यू. के लोकतांत्रिक और मानवीय अकादमिक परिवेश के बिना असंभव था। एम. ए. के अध्ययन के दौरान केन्द्र के लब्ध-प्रतिष्ठित प्राध्यापकों, चिन्तकों, लेखकों, जिनमें प्रो. मैनेजर पाण्डेय, डा. पुरुषोत्तम अग्रवाल, डा. वीरभारत तलवार प्रमुख हैं, के

साथ सम्पन्न अकादमिक अन्त:क्रिया ने ही मानवीय एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण को निर्मित एवं परिष्कृत किया । इनके प्रति श्रद्धा ही व्यक्त की जा सकती है जो आजीवन कभी समाप्त नहीं होगी । क्योंकि शब्द लिख दिए जाने के बाद अपनी प्रासंगिकता बहुत कुछ खो देते हैं ।

अपने एम·ए· एवं एम·फिल· के सहपाठियों के साथ किए गए केवल अकादमिक वाद-विवाद को ही नहीं, बल्कि उन तथाकथित व्यर्थ के और फालतू के क्षणों को भी याद करना भूल नहीं सकता, जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से, साहित्य को समाज की तरफ और समाज को साहित्य की तरफ खींचने में अपनी ही तरह की भूमिका निभाई ।

इन सहपाठियों में जयप्रकाश, अभय, प्रेम, नवनीत, जितेन्द्र, रंजन, वैभव, अरुण, भरत, जयकिशन, पंकज, राम रतन, अश्वनी, संजय, शिवानी, पूनम, मिनेष के प्रति आभार व्यक्त करने के बजाय याद करना, और याद करते रहना ज्यादा सुखकारी और रचनात्मक होगा ।

दिनांक : 21·7·98

— राम मूरत
भारतीय भाषा केन्द्र
जे·एन·यू·
नई दिल्ली-110067.

विषय-सूची

			पृष्ठ संख्या
भूमिका			क - ग
अध्याय - 1	:	आधुनिक हिन्दी उपन्यास और स्त्री-पुरुष संबंध	1 - 33
		(क) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : संक्षिप्त व्याख्या ।	
		(ख) आधुनिक हिन्दी उपन्यास और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : पुरुष रचनाकार	
		(ग) आधुनिक हिन्दी उपन्यास और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : महिला रचनाकार	
अध्याय - 2	:	कृष्णा सोबती की रचनाओं में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप	34 - 50
अध्याय - 3	:	"दिलो-दानिश" उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप	51 - 79
		(क) कृपानारायण और महकबानों के बीच सम्बन्ध (पति और रखैल)	
		(ख) कृपानारायण और कुटुम्बप्यारी के बीच सम्बन्ध (पति और पत्नी)	
अध्याय - 4	:	"दिलो-दानिश" का भाषा-शिल्प	80 - 91
उपसंहार			92 - 95
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची			96 - 99

अध्याय - 1

आधुनिक हिन्दी उपन्यास और स्त्री-पुरुष संबंध

(क) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : संक्षिप्त व्याख्या

(ख) आधुनिक हिन्दी उपन्यास और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : पुरुष रचनाकार

(ग) आधुनिक हिन्दी उपन्यास और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : महिला रचनाकार

आधुनिक हिन्दी उपन्यास और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

(क) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : संक्षिप्त व्याख्या

सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों के गठन की आधारशिला स्त्री-पुरुष सम्बन्ध है। किसी समाज का सांगठनिक स्वरूप क्या होगा, इसका निर्णय पारिवारिक ढांचे में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों से बहुत कुछ निर्धारित होता है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को मुख्यत: दो स्तरों पर देखा जा सकता है -

(1) सूक्ष्म स्तर पर

(2) स्थूल स्तर पर

सूक्ष्म स्तर पर वैयक्तिक सम्बन्धों का महत्व प्रतिपादित होता है। खास वैयक्तिक स्तर पर स्त्री-पुरुष पारस्परिक आकर्षण से प्रभावित होते हैं। एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान और स्वीकृत इस स्तर के संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। तमाम परिवर्तनों के बावजूद स्त्री-पुरुष का यह आदिम संबंध अक्षुण्ण बना रहता है। लेकिन इसकी प्रकृति अपरिवर्तनशील नहीं होती है। स्त्री-पुरुष का यह संबंध सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संस्थाओं और मूल्यों में परिवर्तन आने से प्रभावित होता रहता है। प्रारंभिक समय से स्त्रियों को इन क्षेत्रों से वंचित किया गया है। फलस्वरूप जैसे-जैसे इन क्षेत्रों में स्त्रियों की भागेदारी बढ़ती जाती है, वैसे वैसे क्रमश: पारिवारिक ढांचे के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में भी बदलाव आता है।

इस सम्बन्ध में यह महत्पपूर्ण है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की नियामक ईकाइयां - विवाह, प्रेम, सेक्स और उससे संबंधित नैतिकता, तलाक और बलात्कार आदि हैं। इन नियामक ईकाइयों में बदलते समय

के साथ परिवर्तन अनिवार्य होता है । परिणामस्वरूप स्त्री-पुरुष सम्बन्ध सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही स्तरों पर प्रभावित होने लगता है । परस्पर आकर्षण जनित प्रेम और परिवर्तन के कारण व्युत्पन्न तनाव, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को अत्यन्त जटिल बना देते हैं ।

सामाजिक जीवन में परिवर्तन अनिवार्य परिघटना है । लेकिन 'सम्बन्धों के क्षेत्र में सबसे अधिक भीषण संक्रान्तियों से गुजरना पड़ा है नारी और पुरुष के आपसी संबंधों को ।'[1] इस भीषणता का एकमात्र कारण है कि इस परिवर्तन में भावात्मक उथल-पुथल भी होती है । केवल आर्थिक और सामाजिक भागेदारी के प्रतिमान ही नहीं बदलते हैं ।

पहले-पहल नारी को केवल वासना-तृप्ति और संतानोत्पत्ति का साधन मात्र समझा जाता था । नारी पुरुष की भोग्या और उसकी अधिकृत संपत्ति होती थी । सर्वपल्ली एस. राधाकृष्णन के विचार से 'स्त्री-पुरुष संबंध की आधारशिला यही है कि पुरुष और स्त्री केवल एक शरीर ही नहीं, अपितु आत्मा हैं ।'[2]

ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में मानव जाति में लिंग भेद होने के कारण श्रम-विभाजन करना आवश्यक हो गया । विशेष कर व्यक्तिगत संपत्ति के उदय के साथ ही स्त्री पूरी तरह पुरुष पर अवलम्बित हो गयी । "निजी सम्पत्ति की अवधारणा ने ऐतिहासिक विकास-क्रम में सामाजिक स्तर पर स्त्री को निरन्तर हीनतर स्थिति में पहुंचाया है । पितृ सत्तात्मक समाज तथा संस्थाओं की मौलिक संरचना में निजी सम्पत्ति का मालिक अपनी भी वैयक्तिकता को हस्तान्तरित और अलगायित कर के मात्र अपनी सम्पत्ति को प्यार करता है । उसकी संपत्ति हस्तान्तरित होकर सन्तति के हाथ सुरक्षित होती है । इस स्थिति को स्वामी आत्मा का भौतिक और दैहिक समावेशन समझता है । यह उत्तरजीविता सम्पत्ति के सही उत्तराधिकारी के हाथों में सुरक्षित रहने से ही प्रतिफलित होती है । स्वामी यह चाहता है कि उसकी संपत्ति उसकी मृत्यु

के बाद उसकी ही आत्मा के अंश उसकी सन्तान के पास रहे । वह अपनी सत्ता और संपत्ति का संवर्धन और सुरक्षा के लिए पूर्वजों की पूजा करता है । वह यह प्रमाणित करना चाहता है कि पीढ़ी दर पीढ़ी उसकी वंश वेलि फलती-फूलती रहेगी । अतः पुरुष अपने ईश्वर और अपने बच्चों को पत्नी के अधिकार में कभी नहीं सौंपता । सच्चाई यह है कि पितृसत्तात्मक ताकत से पुरुष ने औरत का प्रत्येक अधिकार छीन लिया है ।[3] वंश परम्परा, खानदान की मर्यादा और उसकी पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से ही स्त्री को संपत्ति/उत्तराधिकार से वंचित किया जाता है । इस प्रकार वृहद् सामाजिक फलक पर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का जो स्वरूप है, उसमें आर्थिक और सांस्कृतिक कारण एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । हर तरह की सामाजिक शक्ति का स्वामी होने के कारण पुरुष अपने निर्णय स्त्री पर लाद देता है । सीमोन द बाउवार की टिप्पणी है -"स्त्रियां जानती हैं कि पुरुषों के नियम उन पर नहीं लागू हैं । पुरुष इस बात को मान लेता है कि स्त्री कानूनों को नहीं देखेगी । वह उसे गर्भपात कराने, व्यभिचार करने, गलत राह पर चलने, धोखा देने और मिथ्या-वादन के लिए प्रोत्साहित करता है । जबकि वह अपने लिए इनका विरोध करता है । एक स्त्री अन्य स्त्रियों से चाहती है कि वे अपने से मिलजुल कर एक आधिकारिक आचार-संहिता तैयार करें । स्त्रियां केवल दुर्भाव से ही अपने मित्रों के आचरण की आलोचना नहीं करतीं । दूसरों के आचरण का निर्णय करने और अपने आचरण को उचित ठहराने के लिए उनको पुरुषों से अधिक नैतिक कुशलता की आवश्यकता है ।"[4]

यही 'अधिक नैतिक कुशलता' आधुनिक जागरूक नारी का मुख्य लक्षण है । औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी - विशेषकर गर्भ निरोधक प्रौद्योगिकी - ने स्त्री जीवन और उसकी दृष्टि को बुनियादी ढंग से प्रभावित किया है । स्त्री धीरे-

धीरे आत्मनिर्भर होती जा रही है । जैसे जैसे शिक्षा का प्रसार होता जा रहा है, वैसे-वैसे वैवाहिक संस्था का पुराना ढांचा जगह-जगह से टूट रहा है । वैसे-वैसे सेक्स, प्रेम, विवाह, विवाहेत्तर प्रेम, तलाक, बलात्कार आदि के बारे में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध नया रूप ले रहा है । समकालीन साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों का यही परिवर्तनशील स्वरूप प्रतिबिम्बित हो रहा है ।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री पुरुष सम्बन्धों पर जो रचनात्मक कार्य हो रहा है, उसकी साहित्यिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में 'नारी लेखन' का निर्णायक योगदान रहा है । अतः अत्यन्त संक्षेप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी लेखन और उसको ऊर्जा प्रदान करने वाली भौतिक परिस्थितियों का संश्लेषित प्रस्तुतीकरण आवश्यक हो जाता है । क्योंकि नारी लेखन कोई निरपेक्ष घटना नहीं है । उसके केन्द्र में कहीं न कहीं पुरुष मौजूद रहता है । इससे स्त्री पुरुष संबंधों का नया आयाम खुलता है ।

यद्यपि विधिवत रूप से स्त्री लेखन की शुरुआत साठ के दशक से मानी जाती है, किन्तु जहां तक साहित्य में नारी चेतना के स्थान पाने की बात है, उसकी शुरुआत नवजागरण काल से ही हो गयी थी । नव-जागरण की चेतना का स्पष्ट प्रभाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लेखन पर पड़ा। नवजागरण की चेतना का मुख्य बहाव व्यक्ति (इन्दिविजुयल) पर था। जाति सम्प्रदाय, वर्ग, एवं लिंग आदि पर आधारित भेदों से परे व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरिमा की प्रतिष्ठा हुई । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों, पत्र-पत्रिकाओं, लेखों आदि के माध्यम से स्त्रियों की सामाजिक समस्या के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला ।

हरिश्चन्द्र मैगजीन, बाला बोधिनी जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया । उनके सहयोगी लेखकों -

प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी आदि ने भी स्त्रियों की समस्याओं को अपने लेखन में स्थान प्रदान किया । भारतेन्दु के बाद द्विवेदी युग के लेखकों ने पौराणिक कथानकों को आधार बना कर महिलाओं पर लिखा । कैकेयी जैसे जनमानस में उपेक्षित पात्र को मैथिलीशरण गुप्त ने अपने लेखन में प्रमुख स्थान दिया । लेकिन द्विवेदी युग का महिलाओं पर किया गया लेखन पारंपरिक नैतिकता के बोझ से आक्रान्त था ।

छायावाद का दौर राष्ट्रीय आन्दोलन के उत्कर्ष का दौर था । भारी संख्या में महिलाओं ने घर की सीमा को लांघ कर राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी की । जिन का प्रभाव स्पष्टतः जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा के लेखन पर पड़ा। महादेवी की रचना `शृंखला की कड़ियां` नारी लेखन की दृष्टि से स्वयं में एक उपलब्धि है । इस रचना में महादेवी वर्मा ने भारतीय परिवेश में भारतीय स्त्रियों की पराधीन स्थिति के लिए उत्तरदायी सामाजिक कारणों का विस्तृत एवं वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया है ।

आज स्वतन्त्र स्त्री लेखन में जो धारा दिखाई पड़ती है, वह आजादी के बाद की घटना है । स्त्री लेखन में पक्षधरता का भाव स्पष्टतः पाया जाता है । वस्तुतः स्त्री लेखन अनिवार्य रूप से राजनैतिक लेखन है, जिसका तात्पर्य है कि इसमें `सत्ता` एवं `विचारधारा` की अवधारणा निहित है । स्त्री-लेखन का सबसे ज्यादा प्रखर रूप अनिवार्य रूप से उपन्यास और कहानियों के माध्यम से सामने आ रहा है ।

स्त्री-लेखन वस्तुतः समाज में स्त्रियों की दशा और उनकी उभर रही पहचान से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है । स्त्री जो कुछ भी पितृसत्तात्मक ढांचे वाली सामाजिक व्यवस्था में भोगती है - चाहे वह सुख हो या दुःख - उसी को अपने लेखन में शब्दबद्ध करती है । इस प्रकार महिला लेखन

स्वांत: सुखाय का लेखन नहीं है । वह नारी की सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिता का सूचक है । स्त्री पुरुष सम्बन्धों के परि-प्रेक्ष्य में देखा जाए तो इसका अर्थ नारी विद्रोह है और जिसका अभि-प्राय ... 'पारिवारिक सत्ता के प्रति अनास्था भाव से नहीं - समता अर्जन के लिए आत्म संघर्ष से है ।'[5] इससे स्पष्ट होता है कि नारी लेखन स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को मानवीय रूप से अनुभव करने और करवाने का आन्दोलन है कि "मैं भी मनुष्य हूं"।

(ख) आधुनिक हिन्दी उपन्यास : स्त्री-पुरुष संबंध

पुरुष रचनाकार

यह सर्वविदित तथ्य है कि प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को नया आयाम दिया । उन्होंने सर्वथा नए साहित्यिक सौन्दर्य को गठित किया । साहित्य को व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य से युक्त किया । समाज के उपेक्षित वर्गों को पहलीबार उन्होंने रचना में बराबरी का दर्जा दिया। स्वभावत: नारी के अधिकारों और उसकी दयनीय स्थिति का चित्रण प्रेमचंद के लेखन में मिलता है ।'कुसुम' नामक कहानी में प्रेमचंद ने नारी की दयनीय दशा की खोज का सफल प्रयास ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया है -- "आदि काल में नारी पुरुष की उसी प्रकार संपत्ति थी, जैसे गाय, बैल या खेती बाड़ी ।... वह स्त्री को अपने घर ले जा कर उसके पैरों में बेड़ियां डाल कर घर में अन्दर बंद कर देता था, उसके आत्म सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है । सोहाग स्त्री की सबसे बड़ी विभूति है । आज कई हजार वर्षों के बीतने पर भी पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । पुरानी सभी प्रथाएं कुछ विकृति या संस्तुति रूप में मौजूद

है ।'[6] यही ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत की है । किन्तु प्रेमचन्द ने एकांगीपन का प्रतिकार किया है । उनके कथा साहित्य में नारी जीवन के प्रत्येक पहलू को चित्रित किया गया है । उनके जीवन की प्रत्येक समस्या, उनके चरित्र का प्रत्येक पक्ष, उनमें विद्यमान त्याग, करुणा, संयम जैसे मानवीय गुणों के साथ साथ ईर्ष्या, द्वेष, आभूषणप्रियता, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता आदि दुर्बलताओं को भी चित्रित किया है ।

उनके साहित्य में चित्रित स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का आधार रोमानी न होकर ठोस सामाजिक धरातल पर आधारित है । अक्सर प्रेमचंद के नारी लेखन की तुलना बंगला लेखक शरतचन्द्र के लेखन से की जाती है । किन्तु "शरत की नायिकाएं त्यागमयी, सहनशीलता, करुणा-मयी भी हैं, किन्तु उनके सारे गुणों का सामाजिक धरातल विलुप्त है । वे सामाजिक परतन्त्रता और उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिकार नहीं करती हैं । जबकि प्रेमचंद की नायिकाएं सचेतन और सक्रिय हैं । वे सामाजिक ही नहीं, पारिवारिक ढांचे में भी अपनी जगह की तलाश संघर्ष करते हुए करती हैं ।'[7] 'मां', 'बेटों वाली विधवा', 'स्वामिनी', 'धिक्कार', लालन, कुसुम आदि कहानियां, 'निर्मला', 'सेवासदन', 'गोदान' आदि उपन्यासों में प्रेमचंद ने स्त्री के शोषण और पराधीनता के लिए उत्तरदायी सामाजिक सांस्कृतिक जड़ों की तलाश की है । लेकिन साथ ही स्त्री के उभरते हुए व्यक्तित्व का ढांचा भी प्रेमचंद खड़ा करते हैं । 'गोदान' उपन्यास में स्त्री के प्रति अशिक्षित ही नहीं, बल्कि शिक्षित व्यक्तियों के दकियानूसी दृष्टिकोण का चित्रण किया गया है । मेहता स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ मानता है, बराबर नहीं ... । 'त्याग, करुणा, अहिंसा, जीवन के उच्चतम आदर्श हैं जिन्हें स्त्री प्राप्त कर चुकी है, पुरुष को प्राप्त करना है । वह वोट को नए युग का मायाजाल समझता है और स्त्रियों को उसके छलावे में न आने की सलाह देता है ।'[8]

प्रेमचन्द ने अपने लेखन में नारी जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित किया है। किन्तु उनके विचारों में अन्तर्विरोध है। 'गोदान' में ही वे मालती की आधुनिकता का परिवर्तन आदर्श सामाजिक जीवन में कर देते हैं। जो ठीक नहीं है। इसके बावजूद प्रेमचन्द ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, वेश्यापन, बलात्कार आदि बुराइयों को रचना के स्तर पर लाकर साहस का कार्य किया है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की मूल विशेषता का सार्थक प्रतिनिधित्व जैनेन्द्र के उपन्यासों में मिलता है। उनके उपन्यासों में-सुनीता, त्यागपत्र, जयवर्धन, परख, कल्याणी और मुक्तिबोध,- भारतीय परिवार के ढांचे में घटित हो रहे सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों का सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। नारी समस्या पर लेखन की दृष्टि से, सुनीता और त्यागपत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सुनीता उपन्यास में श्रीकान्त और सुनीता पति पत्नी हैं। श्रीकान्त का मित्र हरिप्रसन्न, क्रान्तिकारी और राष्ट्रवादी व्यक्ति है। श्रीकान्त सुनीता को आदेश देता है कि वह हरिप्रसन्न को खुश रखे। फलत: एक प्रसंग में सुनीता, हरिप्रसन्न के सामने निर्वस्त्र हो जाती है। सुनीता के नंगे शरीर को हरिप्रसन्न झेल नहीं पाता है और भाग खड़ा होता है। सुनीता, पति श्रीकान्त के साथ लौट कर सुखी जीवन व्यतीत करती है। उपन्यास में स्त्री के नंगे होने के प्रसंग का चित्रण साहसपूर्ण है। लेकिन जैनेन्द्र कभी भी विवाह की मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते हैं। वही उनकी नारी दृष्टि की सीमा है।

इलाचन्द्र जोशी, शिल्प और विषय-वस्तु की दृष्टि से जैनेन्द्र की परम्परा के उपन्यासकार हैं। व्यक्तिपरकता उनकी भी रचना-दृष्टि के केन्द्र में है। लेकिन वे आभिजात्य के विरोधी हैं। अत: अपने महत्वपूर्ण पात्रों का चुनाव प्राय: वे पतित, अपेक्षित वर्ग से करते हैं। उनके उपन्यासों के स्त्री पुरुष पात्रों की अपनी विशिष्टताएं हैं। पुरुषों में हीनता और कुंठा की भावना का विकास और अन्तत: इस कुंठा से मुक्ति,

दोनों के साथ विशेष सम्बन्धों की प्रवृत्ति से निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए `संन्यासी` उपन्यास का नायक नन्दकिशोर प्रचण्ड अहंकारी व्यक्ति है जो अपने कुंठा से उपजे अहंकार की तृप्ति के लिए कई स्त्रियों के जीवन को नष्ट करता है। वह कभी भी सहज व्यक्ति नहीं बन पाता है। समाज से स्वयं को जोड़ने की कोशिश में वह संन्यासी होकर नेता बन जाता है और जेल चला जाता है। `पर्दे की रानी` उपन्यास में निरंजना नामक वेश्या-पुत्री की ओर बाप और बेटा (मनमोहन और इन्द्रमोहन) दोनों के आकृष्ट होने की कहानी है जिसे दोनों ही अपनी वासना की तृप्ति का साधन बनाते हैं। दोनों का जीवन नष्ट होता है। जोशी जी अनैतिक सम्बन्धों की परिणति को खूबी के साथ दिखाने में सफल हुए हैं। नैतिकता की भावना का चित्रण `प्रेत और छाया` उपन्यास में है। पारसनाथ को जब उसका बाप बताता है कि वह उसकी संतान नहीं है तो वह गहरी और विध्वंसक कुंठा का शिकार हो जाता है। वह कई स्त्रियों से सम्बन्ध बनाता है किन्तु किसी से भी सहजता के धरातल पर स्नेहशील सम्बन्ध नहीं बना पाता है। अन्त में उसका बाप बताता है कि उसने झूठ बोला था, तब जा कर पारसनाथ सहज हो पाता है। वह विवाह करता है। इस प्रकार जोशी जी भी जैनेन्द्र कुमार की तरह वैवाहिक ढांचे में ही स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को देखते हैं।

प्रेमचंद और जैनेन्द्र दोनों ने ही स्त्री पुरुष सम्बन्धों पर उपन्यास लिखा है। प्रेमचंद और जैनेन्द्र काम और नैतिकता के धरातल पर एक दूसरे से अलग-अलग हो जाते हैं। जैनेन्द्र में अधिक मनोवैज्ञानिकता और सूक्ष्मता है। प्रेमचंद के लिए दहेज, वेश्यावृत्ति, अनमेल विवाह, गरीबी, तंगी आदि व्यापक परिप्रेक्ष्य ही नारी और पुरुष के बीच सम्बन्धों के विश्लेषण के आधार बनते हैं। नारी की आन्तरिक उथल-पुथल, उसकी यौन कुंठा को प्रेमचंद ने अपने लेखन में स्थान नहीं दिया है जबकि जैनेन्द्र

`सुनीता` में उसी नाम के स्त्री पात्र को अपने प्रेमी के समक्ष नग्न करवा देते हैं। प्रेमचंद इससे कोसों दूर हैं। उनकी नारी आदर्श और नैतिकता के गुणों को धारण करने वाली है। यद्यपि वह `मूक` नहीं है।`गोदान` में मेहता और मालती के बीच का सम्बन्ध इसका उदाहरण हो सकता है। मालती द्वारा पश्चिमी संस्कृति के हाव, भाव और पहनावे को प्रेमचंद ज्यादा सहानुभूति नहीं देते हैं। यहां तक कि बाद में उसका आदर्शीकरण करके उसके व्यक्तित्व को ही बदल डालते हैं। जैनेन्द्र स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बीच में आदर्शवाद का कोई पर्दा नहीं डालते हैं। क्योंकि आजादी के बाद शहरीकरण और औद्योगिकीकरण आदि ने स्त्री पुरुष सम्बन्धों को अधिक से अधिक वैयक्तिकता की ओर ही झुकाया है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को ज्यादा आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से देखने और उसे कृतिबद्ध करने की प्रवृत्ति अज्ञेय में मिलती है। अज्ञेय के उपन्यासों में `शेखर एक जीवनी`, `नदी के द्वीप` और `अपने अपने अजनबी` प्रमुख हैं। स्त्री-लेखन की दृष्टि से `शेखर एक जीवनी` अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उपन्यास के केन्द्र में शेखर है, किन्तु शशि की उपस्थिति ही उसे पूर्ण रूप देती है। विद्रोही चेतना से युक्त क्रान्तिकारी शेखर और शशि के प्रेम सम्बन्धों के माध्यम से स्त्री पुरुष सम्बन्धों का एक सर्वथा नया आयाम इस उपन्यास में खुलता है। दोनों प्रेमी प्रेमिका हैं। लेकिन दो बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली तो शशि, शेखर की मौसेरी बहन है। दूसरी बात यह है कि शेखर शशि को, शशि के विवाह हो जाने और अन्ततः उस के टूटने के बाद भी प्रेम करता है। वह कहता है --`सबसे पहले तुम शशि... तुम वह सान रही हो जिस पर मेरा जीवन बराबर चढ़ाया जाकर तेज होता रहा है।`[9] शेखर और शशि का यह संबंध सर्जनात्मक रूप में वर्णित है। शशि के व्यक्तित्व में इतना आत्मविश्वास और धैर्य है कि शेखर को अवसाद के क्षणों में संभालने में समर्थ होती है। शेखर आधुनिकता का प्रतिभू है। यौन शुचिता की पुरानी अवधारणा उसके प्रेम में बाधा नहीं पहुंचाती। यह जानते हुए कि शशि के पति ने उसे बदचलन कह कर घर से लात मार

कर भगा दिया था, शेखर शशि से अटूट प्रेम करता है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शशि और शेखर का सम्बन्ध मूलत: स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध है । दोनों एक दूसरे के लिए प्रतिबद्ध और समर्पित हैं । हां, शशि केवल 'सान' बन कर रह जाती है । उसका व्यक्तित्व उभर नहीं पाता ।

समाजवादी साहित्यिक-दृष्टि सम्पन्न उपन्यासकारों ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को अपने लेखन में नई दिशा दी । इनके पात्र चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, व्यापक सामाजिक,राजनैतिक और आर्थिक गति-विधियों के बीच संघर्ष करते हुए अपनी उपस्थिति का अनुभव कराते हैं । यशपाल के पात्र ऐसे ही हैं । 'दादा कामरेड' उपन्यास की जीवन्त पात्र शैल का कहना है कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए केवल विदेशी शासन के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि पारिवारिक और सामाजिक बन्धनों के विरुद्ध भी संघर्ष करना पड़ेगा । वह व्यक्ति की इसी जीवन में कामना की पूर्ति को सब से महत्वपूर्ण उद्देश्य मानती है । कहना न होगा कि कालान्तर में महिला रचनाकारों ने पारिवारिक व सामाजिक बन्धनों को अपनी रचनाओं में लक्षित किया ।

यौन-शुचिता के उत्पीड़नकारी पाखण्ड का पर्दाफाश यशपाल अपनी क्लासिक कृति 'झूठा-सच' में जीवन्त और संघर्षशील पात्र तारा के माध्यम से करते हैं । उपन्यास विभाजन की विभीषिका पर केन्द्रित है । आज भी दंगों का कहर औरतों को झेलना पड़ता है । तारा ऐसे ही एक दंगाई की चंगुल में फंस जाती है जो उस के साथ बलात्कार करता है । लेकिन तारा स्वयं को यौन-शुचिता का पर्यायवाची नहीं मानती । इसीलिए वह आत्महत्या करने के बजाय संघर्षकरते हुए अपने जीवन को ठोस आधार देती है । वह फिर विवाह करने में और सामान्य जीवन जीने में सफल होती है ।

सन् 1961 में प्रकाशित मोहन राकेश का उपन्यास `अंधेरे बंद कमरे` स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के जटिल तनावों को व्यक्त करता है । वैवाहिक मर्यादा की पुरानी रूढ़िवादी परम्परा यहां टूटती है । तनाव का कारण प्रणय त्रिकोण की समस्या है । उपन्यास के केन्द्र में है - हरबंश और नीलिमा का दाम्पत्य जीवन । दोनों का प्रेम विवाह हुआ है । बारह साल तक एक साथ रहते हुए भी वे अलगाव की गहरी भावना से ग्रसित हैं । ..."वे दोनों जैसे एक ही घेरे में विपरीत दिशाओं में घूमते हुए नक्षत्र थे, ...जो न तो उस घेरे से निकल सकते थे और न ही अपनी दिशा बदल सकते थे । उनके लिए साथ रहना भी अनिवार्य था और विपरीत रहना भी ।`[10] अपने व्यक्तित्व और जिन्दगी के प्रति अत्यंत सजग नीलिमा पति की असफलता को अपनी असफलता मानने को तैयार नहीं । वह साहस के साथ कहती है, `तुम एक असफल आदमी हो, इस लिए तुम मुझे भी अपनी तरह असफल बना कर रखना चाहते हो । मगर मैं असफल चाहे रहूं, तुम्हारे घर में अब नहीं रहूंगी...`[11] ।

इसी प्रकार सन् 1964 में प्रकाशित नरेश मेहता का उपन्यास `दो एकांत` पति-पत्नी के साझे एकांत के क्रमश: बंट कर दो एकान्त बनने की कहानी है । पति विवेक पेशे से डाक्टर है किन्तु वह आत्म-निष्ठ व्यक्तित्व वाला व्यक्ति है । वह चंचल और अपने आकर्षण को ले कर अत्यन्त सजग पत्नी वानीरा की चाहत को समझ नहीं पाता है । परिणामत: वानीरा मेजर आनंद के साथ सम्बन्ध बनाती है और उससे गर्भ भी धारण कर लेती है । पति और प्रेमी के बीच झूलती वानीरा दुविधाग्रस्त हो जाती है -`अब वह स्वत: कुछ नहीं रह गयी थी । देह में आनंद और विचारों में विवेक था ।`[12] वस्तुत: वानीरा द्वारा मेजर आनंद के साथ सम्बन्ध बनाना, यह सूचित करता है कि व्यक्ति को चाहे वह पुरुष हो या नारी, अपनी प्रकृति के अनुसार चुनाव करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए । यह पुरुष सत्ता के विरुद्ध विद्रोह है ।

गिरिराज किशोर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर अपने ढंग से चिन्तन करते हैं । पति-पत्नी या स्त्री-पुरुष के बीच शारीरिक सम्बन्ध का जो सामाजिक पक्ष है, वह उनकी पुस्तक 'स्त्री-पुरुष सम्बन्ध' - कुछ पुनर्विचार' में दर्ज हैं । लेकिन उनकी औपन्यासिक कृति 'यात्राएं' इसे रचना के स्तर पर प्रस्तुत करती हैं । उपन्यास में 'मैं' (पुरुष) और वन्या, पति-पत्नी हैं । पहली रात के मिलन में 'मैं' वन्या के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने में असफल हो जाता है । वह सोचता है कि 'एक बार की अनुपलब्धि सदा के लिए उपलब्धियों से वंचित तो नहीं कर देगी ।'[13] भावनात्मक स्तर पर अत्यन्त आत्मीयता स्थापित होने के बावजूद पति-पत्नी शारीरिक रूप से अनजाने रहते हैं । परिणामत: उनकी सामाजिकता पंगु हो जाती है । वस्तुत: पुरुष स्त्री को केवल वासना की वस्तु समझता है । यौन-सम्बन्धों से अलग जो स्त्री का स्वतन्त्र गतिशील व्यक्तित्व है, उसे स्वीकार नहीं करता । स्त्री को लेकर पुरुषों में जो, यह, छवि है, वह स्वयं पुरुष को हीन भावना और कुंठा से भर देती है ।

पुरुषों के बीच समलिंगी सम्बन्ध को समाज थोड़ी बहुत हिचक के साथ सहज ढंग से लेता है । किन्तु स्त्रियों के बीच समलिंगी सम्बन्ध को, वह भी भारतीय परिवेश में, बहुत ही आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाता है । केवल सूद का उपन्यास 'मुर्गीखाना' इसी विषय पर केन्द्रित है । उपन्यास की नायिका शीला का कालेज-होस्टल की वार्डन सविता देवी के साथ समलैंगिक सम्बन्ध है । शीला परचेजिंग आफीसर है । वह अत्यन्त मेहनती और व्यवहार कुशल है । उसकी प्रिय चीजें हैं - शराब, सिगरेट और सुन्दर लड़कियां । शीला पहले सुनील नामक व्यक्ति को प्यार करती थी । लेकिन उसकी रूम-मेट सविता की यौन-लिप्सा कुछ और थी । थियेटर में शीला को एक ओर सविता सहलाती और दूसरी ओर से सुनील । 'तब उसे लगा था जैसे एक ही समय

में दो प्रयोगशालाओं में उस के तन-मन का परीक्षण हो रहा है ।'[14] लेकिन एक दिन जब वार्डन शीला को सविता के साथ सोते हुए देख लेता है तो शीला को अपने साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने को मजबूर करता है । इस प्रकार शीला गलत राह पर चल निकलती है ।'मुर्गीखाना' में महिलाओं के बीच समलिंगी सम्बन्धों के असामान्य सामाजिक परिणामों पर बल दिया गया है जिसके कारण यौन सम्बन्धों में विकृति पैदा होती है ।

निर्मल वर्मा ने हिन्दी साहित्य को 'एक चिथड़ा सुख', 'लाल टीन की छत' और 'वे दिन' जैसी रचनाएं दी हैं । एक सर्वथा अलग धरातल पर स्त्री पुरुष सम्बन्धों की दृष्टि से 'वे दिन' का महत्व अलग है । उपन्यास के 'मैं' और रायना, अलग पृष्ठभूमि के हैं । दोनों अकेलेपन के गहरे घाव से पीड़ित हैं । दोनों का संबंध एक नए नीति-शास्त्र को जन्म देता है । 'मैं' रायना का सम्बन्ध गाइड और टूरिस्ट का है । रायना के अकेलेपन का कारण युद्ध की विभीषिका है । 'लड़ाई में बहुत लोग मरते हैं ... इसमें कुछ अजीब नहीं ... लेकिन कुछ चीजें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं - शान्ति के दिनों में ... हम उन में से थे ... ।'[15] इसीलिए रायना केवल वर्तमान में जीता है ।'सिर्फ इन दिनों में ... उसके बाहर नहीं ।'[16] वही क्षणवादी जीवन-बोध रायना को मैं के साथ शरीर से जोड़ देता है । लेकिन वे जानते हैं कि यह क्षणिक मिलन का सुख अस्थाई है । वे फिर अलग हो जाते हैं जिन्दगी के अकेलेपन के गहरे गर्त में ।'इसका कारण है ।'आधुनिक व्यक्ति अपनी इस नियति को जानता है । इसीलिए प्रेम उसकी आकांक्षाओं का स्वर्ग नहीं है । अकेलेपन के घोर अन्धेरे में - दो व्यक्ति लगभग टटोलते हुए एक दूसरे का हाथ पकड़ लेते हैं - संवेदना आश्वासन, सुख और संतोष की लहर दो व्यक्तियों के बीच प्रवाहित होती है और वे फिर अलग हो जाते हैं ।'[17] निर्मल के यहां स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का धरातल अत्यन्त आत्मीय और मानवीय है । वह प्रेम की गहरी और अवसादपूर्ण भावना

से संचालित होता है । उनके यहां स्त्री पुरुषों के विरुद्ध विद्रोह नहीं करती । वह प्रेम की भूखी है । उसे प्रेम चाहिए । इस प्रकार प्रेम ही वह भावभूमि है, जिस पर निर्मल वर्मा के स्त्री पुरुष आपस में मिलते हैं ।

अमृतलाल नागर के सारे उपन्यास सामाजिक जीवन के बहुत से अनछुए पहलुओं को उजागर करते हैं । उनके प्रसिद्ध उपन्यास `बूंद और समुद्र` में `ताई` और `वनकन्या` के माध्यम से नारी जाति के उत्पीड़न को उद्घाटित किया गया है । दोनों ही नारियां पुरुष अत्याचार से पीड़ित हैं । इनमें व्यक्तित्वों में पुरुष अत्याचार की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न रूप में होती है । ताई अनपढ़ है । पति द्वारा परित्यक्ता है । साथ ही निःसन्तान भी । पति वंचिता पुत्रहीना ताई के भीतर सुलगता हुआ प्रेम एक बार तब जोर मारता है, जब तारा को बच्चा हो रहा होता है ।... `उसके पश्चात् तो ताई का प्रेम सामाजिक जीवन के बृहत्तर भाग को सींचता हुआ निरन्तर महान् होता चलता है ।`[18] इस उपन्यास में यही कमजोरी है कि वह एक स्त्री के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्पीड़न का उदात्तीकरण और आदर्शीकरण कर देता है ।

धर्मवीर भारती के उपन्यास व्यापक सामाजिक परिवेश में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का आकलन करते हैं । `सूरज का सातवां घोड़ा` और `गुनाहों का देवता` में यही विषय वस्तु है । `सूरज का सातवां घोड़ा` में प्रेम कहानियां हैं । किन्तु इन प्रेम सम्बन्धों के माध्यम से हमारे समाज के समग्र जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है । प्रेम ही स्त्री-पुरुष के मिलन का आधार हो सकता है । वही नैतिक है । भले ही इस प्रक्रिया में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वैवाहिक जीवन के दायरे टूट जाएं । यही इस उपन्यास का उपदेश है । तन्ना, सत्ती, जमुना, लिली के प्रेम सम्बन्ध इसी तथ्य का उद्घाटन करते से लगते हैं ।

`लक्ष्मीनारायण लाल` का उपन्यास `बड़ी चम्पा और छोटी चम्पा` वेश्या जीवन की समस्या को मार्मिकता से उभारता है । सरकारी आदेश से वेश्यालयों से वेश्याओं को हटाया तो गया परन्तु यह नहीं बताया गया कि वे कहां जाएं । उन्हें एक सुनिश्चित जगह से तोड़ कर अन्धेरे में ठेल दिया गया । यह बात सही है कि वेश्यालय समाज के लिए अभिशाप हैं । उनका उन्मूलन होना चाहिए । किन्तु इससे दो समस्याएं सामने आती हैं । क्या वेश्यालयों का उन्मूलन कर वेश्यालयों के जीवन-निर्वाह और स्वस्थ विकास के लिए कोई ठोस योजना सरकार के पास थी और क्या वेश्यालयों मात्र के उन्मूलन से पुरुषों द्वारा किया जा रहा यौन शोषण समाप्त हो जाएगा ? छोटी चम्पा का चरित्र इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को व्यक्त करता है कि स्त्री वेश्या होकर ही पुरुष वर्चस्व से आजाद हो सकती है । वह पत्नी बनने के प्रस्ताव को ठुकरा देती है । वह वेश्या धर्म को पतिव्रता धर्म से अधिक पवित्र और गौरवपूर्ण मानती है । इसीलिए वह महंत सतीनाथ और उनके गुरु के समस्त झूठे धार्मिक अनुशासनों और आडम्बरपूर्ण विश्वासों को चुनौती देती हुई अहिल्या की पूजा करती है जो कलंकिनी और सामाजिक उपेक्षा का प्रतीक मानी जाती है ।

राजेन्द्र यादव बराबर अपने आलोचनात्मक लेखों और कृतियों द्वारा स्त्रियों के अधिकारों की वकालत करते रहे हैं । `उखड़े हुए लोग`, `सारा आकाश`, `एक इंच मुस्कान` में उनके विचार व्यक्त हुए हैं । `उखड़े हुए लोग` में देशबन्धु जी केन्द्र में हैं जो पूंजीवादी नेता हैं और जो अपनी बाहरी शालीनता से अपने भीतरी कुरूप चरित्र को ढके हुए हैं । यह गीता और गांधी का भक्त बनता है, सामाजिक सेवक के रूप में जाना जाता है, किन्तु लंपट है, व्यवसाय धर्मी है । स्त्रियों की अस्मत खराब करता है और एक तरह से उन्हें चुप रहने को मजबूर कर देता है । लेखक ने शरद, जया, पद्मा और सूरज जैसे युवा पीढ़ी के लोगों के माध्यम से देशबन्धु के ढोंग पर प्रहार किया है ।

भीष्म साहनी ने `कड़ियां ` और `बसन्ती` उपन्यासों के माध्यम से स्त्री के जटिल सामाजिक पहलुओं को उद्घाटित किया है । `कड़ियां ` की प्रेमिला पुराने संस्कारों की स्त्री है । अधिक बच्चे व पति की सेवा उसके उद्देश्य हैं । किन्तु अपनी धर्मपरायणता के चलते वह यौन सम्बन्धों की उष्मा को पहचान नहीं पाती है । उसका पति महेन्द्र असंतुष्टि का अनुभव करता है । उसका सम्बन्ध सुषमा नाम की लड़की से हो जाता है । सुषमा के साथ अपने संबंधों को महेन्द्र न्यायसंगत बताता है और बड़ी तीव्रता केसाथ प्रमिला के नारीत्व की अपर्याप्तता, शुष्कता, ठण्डेपन और कुल मिलाकर उसके व्यक्तित्व की कुरूपता को महसूस करता है । पुरुष और नारी के मनोवैज्ञानिक स्तरों की यात्रा से गुजरती हुई कथा अपने भीतर से धीरे-धीरे सामाजिक विषमता के अनेक कारणों को खोजती है । प्रमिला ठण्डी औरत है । क्यों ? क्योंकि उसके पारिवारिक वातावरण ने वही दिया है । वह पति और पुत्र की सेवा तथा धर्मपरायणता को ही गृहिणीत्व या नारीत्व की चरम सार्थकता मानती है; क्योंकि उसके संस्कार पुरुष सत्ता के निर्मित हैं ।

इसी प्रकार `बसंती` उपन्यास में बसन्ती नाम की स्त्री एक ही साथ पारिवारिक एवं सामंती सत्ता से टकराती है । वह संघर्ष करते-करते स्वयं को एक आत्मनिर्भर व्यक्ति बनाने में सफल होती है ।

ऐतिहासिक कथानकों को माध्यम बना कर भी हिन्दी साहित्य के लेखकों ने नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है । इनमें सबसे पहले वृन्दावनलाल वर्मा का नाम आता है । उनके अनेक उपन्यास बुन्देलखण्ड के अंचल को अभिव्यक्त करते हैं । किन्तु `विराटा की पद्मिनी`, `मृगनयनी` `झांसी की रानी` में उन्होंने स्त्रियों के आत्मविश्वास और साहस का चित्रण एक साथ किया है । `विराटा की पद्मिनी` और `मृगनयनी` की नायिकाएं प्रेम को आधार बना कर पुरुष सत्ता को चुनौती देती हैं । जबकि `झांसी की रानी` का चित्रण एक ऐतिहासिक सत्य है । उन्होंने 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में अद्भुत साहस का परिचय दिया ।

आचार्य हजारीप्रसाद के उपन्यास ऐतिहासिक ढांचे में स्त्री मुक्ति का गान करते हैं । उनकी दृष्टि में नारी भोग्या नहीं है । उनके विचार से यदि नारी को समाज से अलग कर दिया जाए तो सम्पूर्ण समाज व्यवस्था पर ही प्रश्न चिह्न लग जाएगा । द्विवेदी जी स्त्री के व्यक्तित्व में अन्तर्निहित रचनात्मकता को भली भांति समझते थे । वे कहते हैं कि "सभ्यता का आरंभ स्त्री ने किया था । वह प्रकृति के नियमों से मजबूर थी । पुरुष की भांति उच्छृंखल शिकारी की भांति नहीं रह सकती थी । झोंपड़ी उसने बनायी थी, अग्नि-संरक्षण का आविष्कार उसने किया था, कृषि का आरंभ उसने किया था । पुरुष निरर्गल था, स्त्री सुशृंखलता ।"[19]

द्विवेदी जी के उपन्यासों में भी नारी मुक्ति के प्रश्नों को उठाया गया है । परन्तु एक बात साफ है कि उनका दृष्टिकोण मध्यम स्थिति की है । उन्होंने नारी को घर की चहारदीवारी में बांधने का तो समर्थन नहीं किया, परन्तु उन्मुक्त गगनचारिणी बनने को भी प्रशंसनीय दृष्टि से नहीं देखा है । उन्होंने 'मेघाविनी विशाखा' नामक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने विशाखा के शालीनता, बुद्धिमत्ता, दानशीलता, शिष्टता आदि गुणों का विस्तार से उल्लेख किया है । विशाखा के चरित्र से द्विवेदी जी का प्रभावित होना इस बात का प्रमाण है कि वे प्रत्येक नारी में विशाखा जैसी मेधा, पांडित्य, विद्वता तथा सुसंस्कृति की कल्पना करते थे । 'बाणभट्ट की 'आत्मकथा', 'चारुचन्द्र लेख', 'पुनर्नवा' आदि उपन्यासों में नारी के इसी व्यक्तित्व का रेखांकन किया गया है ।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रमुख पुरुष पात्र स्वयं बाणभट्ट हैं और दो प्रमुख स्त्री पात्र निपुणिका और भट्टिनी हैं । बाणभट्ट के सम्पर्क में सबसे पहले निपुणिका आती है । वह उसके नाटक मण्डली में अभिनय करने लगती है तथा धीरे धीरे बाणभट्ट की तरफ आकर्षित होने लगती है । बाणभट्ट को पाने के लिए उसके मन में अदम्य इच्छा उत्पन्न

हो जाती है । किन्तु बाणभट्ट के मन में नारी की छवि दूसरी ही है । वह नारी की देह को देव-मन्दिर मानता था । उसने कभी नहीं सोचा कि यह नारी देह हाड़-मांस का है । इस प्रकार बाणभट्ट और निपुणिका का सम्बन्ध उदात्त के धरातल पर होता है । नारी सौन्दर्य के प्रति आचार्य द्विवेदी जी की जो अवधारणा थी, उसे उन्होंने भट्टिनी के रूप में प्रस्तुत किया है । बाणभट्ट एक स्थान पर कहता है -"उसको (भट्टिनी को) देख कर अत्यन्त पतित व्यक्ति के हृदय में भी भक्ति हुए बिना नहीं रह सकती । उसके शरीर से स्वच्छ कांति प्रवाहित हो रही थी । अत्यन्त धवल पुंज से उसका शरीर एक प्रकार से ढका हुआ जान पड़ता था मानो वह स्फटिक-गृह आबद्ध हो, या दुग्ध सलिल में निमग्न हो, या विमल चीनांशुक में समावृत हो या दर्पण में प्रतिबिंबित हो ।"[20]

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की दृष्टि से द्विवेदी जी का उपन्यास 'पुनर्नवा' अत्यन्त महत्वपूर्ण है । ऐतिहासिक पार्श्वभूमि पर आधारित इस उपन्यास में स्त्री पुरुष संबंधों के एक विशिष्ट रूप को दिखाया गया है । पति पत्नी और प्रेमिका के त्रिकोणीय संबंधों से उपजे तनाव को दिखाया गया है । लेकिन यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि यह तनाव आधुनिक युग के त्रिकोणीय संबंधों से उपजे तनावों से भिन्न है । यह तनाव अपनी चरम सीमा पर पहुंचने से पहले ही दिग्भ्रमित हो जाता है । उपन्यास में गुप्त काल के आसपास का समय है । समुद्रगुप्त का सेनापति गोपाल आर्यक अत्यन्त पराक्रमी और जनप्रिय सेनापति है । प्रजा उसे महावराह का अवतार मानती है । गोपाल आर्यक विवाहित है । उसकी एक सुन्दर और बुद्धिमान पत्नी है मृणाल मंजरी । किन्तु उसे चन्द्रा नामक एक अन्य महिला से प्रेम हो जाता है । लेकिन प्रजा को यदि इसकी जानकारी हो गयी तो उसकी लोकप्रिय छवि का क्या होगा ? प्रजा में असन्तोष व्याप्त हो सकता है । अतः समाज के दबाव से डर कर आर्यक जंगल में भाग जाता है ।

चन्द्रा का विवाह एक नपुंसक व्यक्ति से उसकी मर्जी के विरुद्ध हो जाता है । अपनी इसी त्रासदपूर्ण सामाजिक स्थिति से मुक्ति के लिए चन्द्रा विद्रोह करती है । वह गोपाल आर्यक से प्रेम करती है । जो नैतिक है ।

वस्तुत: द्विवेदी जी ने प्रेम त्रिकोण के माध्यम से रूढ़ियों की व्यर्थता की तरफ संकेत किया है । 'लोकवाद झूठ पर आधारित झूठा प्रपंच है । लोक स्तुति उससे भी बड़ा धोखा है ।'[21]

मध्यवर्गीय नारी के सामाजिक संघर्ष का अत्यन्त प्रभावी चित्रण सुरेन्द्र वर्मा के बहुचर्चित उपन्यास 'मुझे चांद चाहिए' में हुआ है । उपन्यास की नायिका वर्षा वशिष्ठ है । वह अपने आत्मसंघर्ष के बल पर, श्रेष्ठ अभिनेत्री बनती है । किन्तु वह प्रेम करती है एक असमझौतावादी कलाकार हर्ष से । हर्ष कला जगत में घुसपैठ करती जा रही खतरनाक व्यावसायिकता से समझौता नहीं करता । उसके लिए कला ही सर्वोच्च है । इसीलिए उसे आत्महत्या करनी पड़ती है । हर्ष की मृत्यु पर दु:खी वर्षा के उद्गार हैं -'मेरे वास्ते चन्द्रमा हमेशा के लिए बुझ गया ।'[22] हर्ष के खोने का दु:ख झेलते हुए भी वर्षा संघर्ष करती है । लेकिन निरन्तर यांत्रिक और व्यावसायिकता प्रधान होती जा रही सामाजिक जीवन प्रणाली में उसे उसका चांदनहीं मिलता है । वह उससे उतने ही दूर होता जाता है जितना वह उसके नजदीक पहुंचती है । लेकिन वर्षा मातृत्व को प्राप्त करती है । मातृत्व की प्राप्ति के बाद वर्षा का जुझारू व्यक्तित्व कुंद सा हो जाता है । उसमें पुराना आकर्षण नहीं रहता है ।

सुरेन्द्र वर्मा ने अपनी आकर्षक शिल्प शैली के ढांचे में वर्षा को शुरू से ही पारिवारिक और सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध सफलतापूर्वक संघर्ष करते हुए दिखाया है । लेकिन जैसा कि प्रभा खेतान ने ठीक ही लिखा है कि 'वर्षा वशिष्ठ बहुत कुछ पुरुष की कल्पना है । उसका चरित्र बहुतकुछ

DISS O,152,3,N2,5,7;9(Y,15824-6) 152 N8

TH-7839

Jawaharlal Nehru University LIBRARY

एक पुरुष की `स्त्री-कल्पना` का प्रतिबिम्ब है । मातृत्व की प्राप्ति स्त्री के लिए कोई अनिवार्य आवश्यकता नहीं है ।`[23]

(ग) आधुनिक हिन्दी उपन्यास : स्त्री पुरुष सम्बन्ध

महिला रचनाकार

जब आधुनिक हिन्दी साहित्य में महिला लेखन पर और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर बात होती है तो सहज ही सब का ध्यान महादेवी वर्मा के लेखन पर जाता है । महादेवी वर्मा छायावाद की प्रमुख रचनाकार हैं । उनकी कविता में `छायावाद` के स्वभाव के अनुसार कल्पना प्रवणता, वायवीयता, रहस्यात्मकता आदि विशेषताएं स्वाभाविक हैं । लेकिन उन का गद्य साहित्य अत्यन्त यथार्थवादी है ।स्त्री की मुक्ति की चिन्ता महादेवी वर्मा की चिन्ता के केन्द्र में है । स्कूल में पढ़ते हुए ही उन्होंने `पर्दा-प्रथा` पर शानदार लेख लिया । साथ ही`भारतीय नारी` नामक नाटक की रचना की । स्त्री की स्वतन्त्रता के विभिन्न पहलुओं को गहराई से विश्लेषण करता हुआ उनका प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह`शृंखला की कड़ियां ` 1942 में प्रकाशित हुआ । इस निबन्ध में महादेवी वर्मा ने स्त्री के सामाजिक दुर्दशा के इतिहास और वर्तमान विभिन्न सामाजिक वर्गों की स्त्रियों की समस्याओं, हिन्दू पारिवारिक ढांचे में पत्नी की स्थिति, वेश्याओं की दशा, घर एवं घर के बाहर यातना के द्वन्द्व में फंसी भारतीय नारी आदि पक्षों पर प्रकाश डाला है ।स्त्री की मुक्ति के लिए शिक्षा और आर्थिक समानता पर उन्होंने विशेष बल दिया है । `महादेवी वर्मा के स्त्री-विमर्श का महत्व इस बात में है कि उन्होंने भारतीय स्त्रियों की समस्याओं का विवेचन भारतीय सामाजिक व सांस्कृतिक वि-शिष्टता के परिवेश में किया है, इसीलिए उन के लेख पहले से ज्यादा आज प्रासंगिक हैं । सिआन द बुआर के क्रान्तिकारी चिन्तन का सन्दर्भ यूरोपीय समाज और इतिहास है, जबकि महादेवी वर्मा के विचार भारतीय समाज और संस्कृति के इतिहास से जुड़े हैं ।`[24]

यद्यपि महादेवी वर्मा ने स्वतन्त्र रूप से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर कोई औपन्यासिक कृति नहीं रची है, लेकिन 'शृंखला की कड़ियां' में स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं पर जो सूक्ष्म और गहरा चिन्तन मिलता है, उससे स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की एक नयी रूपरेखा स्वयं ही बन जाती है ।

दरअसल हिन्दी साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों पर स्वतन्त्रता के पहले से ही लिखा जा रहा है । कालान्तर में हिन्दी में जो साहित्य इस दृष्टि विशेष से लिखा गया है और लिखा जा रहा है, उसके लिए विचारों के स्तर पर सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि भी जरूरी हो जाती है । विचारों और चिन्तन के एक विशेष प्रकृति के कारण ही साठ के दशक में स्त्री पुरुष संबंधों पर केन्द्रित जो उपन्यास लिखे गए, उन में और पहले के स्त्री पुरुष संबंधों पर आधारित उपन्यासों की दृष्टि में जो अन्तर दिखायी पड़ता है, उसका कारण परिवर्तित विचारधारा ही है ।

महादेवी वर्मा ने पहली बार एक महिला की दृष्टि से एक चिन्तक की दृष्टि से स्त्री पुरुष सम्बन्धों पर विचार किया है । उनकी चिन्तन शैली में स्त्री पुरुष सम्बन्धों की ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक सन्दर्भों में वस्तुपरक छानबीन की गयी है । संक्षेप में महादेवी का महत्व इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने स्त्री पुरुष सम्बन्धों की विचारधारा के निर्माण में प्रारंभिक और गंभीर प्रयास किया ।

महादेवी यद्यपि आजादी के बाद काफी सालों तक लिखती रहीं, किन्तु उनके रचनाकर्म की शुरुआत आजादी मिलने के पहले हो चुकी थी । नवजागरण की चेतना, समाजवादी चेतना और गांधी जी की कार्यशैली से प्रभावित होकर हजारों महिलाएं स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भूमिका में थीं । उन्होंने घर की चहारदिवारी की सीमा को पहली बार लांघा था । महादेवी की अन्तर्दृष्टि इतनी तेज थी कि उन्होंने स्त्रियों की मुक्ति में स्वतन्त्रता आन्दोलन की सीमा को भांप लिया था । 'स्वतन्त्रता आन्दोलन

में स्त्रियों की दशा जाल में फंसी चिड़ियों की तरह थी, जो आकाश में उड़ी तो, लेकिन जाल के साथ । वे स्वयं को जाल से मुक्त न करा सकीं, लेकिन उन्हें आकाश में होने का अनुभव हुआ । वे नीचे उतरीं, लेकिन जाल अभी भी है ।'[25]

महिला-लेखन संबंधित बड़ा जटिल विवाद है कि क्या पुरुषों द्वारा रचित साहित्य भी स्त्री की वास्तविक और यथार्थ संवेदना या भाव को व्यक्त कर सकता है ? महादेवी वर्मा का विश्लेषण इसका स्पष्ट तौर पर विरोध करता है । 'पुरुष द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श हो सकता है परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुंच सकता है परन्तु यथार्थ के अधिक समीप नहीं । पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परन्तु नारी के लिए अनुभव । अत: अपने जीवन का जैसा सजीव चित्रण हम दे सकेंगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सकेगा ।'[26]

यही नहीं, महादेवी वर्मा पितृसत्तात्मक पारिवारिक ढाचे वाले सामाजिक जीवन में स्त्रियों के साथ दोयम दर्जे का जो व्यवहार किया जाता है, उससे असन्तुष्ट हैं । यही असन्तोष उनकी रचनाशीलता को नई ऊर्जा देता है, 'किसी भी पुरुष का कैसा भी चारित्रिक पतन हो जाए, उसका सामाजिक अधिकार नहीं छीना जा सकता, उसे गृह जीवन से निर्वासित नहीं किया जाता... धर्म से लेकर राजनीतिक सभी क्षेत्रों में ऊंचे-ऊंचे पदों तक पहुंचने का मार्ग नहीं रुकता । साधारणत: महान् दुराचारी पुरुष भी परम सती स्त्री के चरित्र का ही आलोचक नहीं, न्यायकर्ता भी बना रहता है ।'[27]

इस प्रकार महादेवी के विचार में एक प्रकार का आक्रोश सहज ही मिलता है । वह स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक सभी पक्षों का आकलन करती हैं । उनके लेखन , विशेषकर गद्य में, स्त्री की आत्मनिर्भरता और व्यक्तित्व स्वातंत्र्य पर बल दिया गया है ।

'अपने अपने चेहरे', 'तालाबंदी', 'आओ पेपे घर चलें', 'छिन्नमस्ता' आदि की रचनाकार प्रभा खेतान महिला लेखन में अग्रणी हैं। वे पुरुषों द्वारा किए गए स्त्री लेखन की कमजोरी की कटु आलोचक हैं। नारीवाद आन्दोलन से वे प्रभावित हैं, जिसके बारे में उनकी राय है, 'वास्तव में नारीवाद का केन्द्रीय मुद्दा है। उन समस्याओं को अभिव्यक्त करना जिन्हें अब तक इतिहासकार केवल पुरुष सन्दर्भ में ही देखते रहने के अभ्यस्त हैं, जिसका परिणाम यह हुआ कि इतिहास और दर्शन द्वारा किए गए अन्याय का ठप्पा स्त्री चेतना पर हमेशा के लिए अंकित हो गया है।'[28] प्रभा खेतान की इस चिन्ता का स्पष्ट प्रतिफलन उन की प्रसिद्ध कृति छिन्नमस्ता में हुआ है। केन्द्र में हैं प्रिया। शादी, परिवार समाज द्वारा प्रगति के रास्ते बंद किए जाने वाले अवरोधों को पराजित करते हुए वह अन्ततः आत्मनिर्भर हो जाती है। वस्तुतः प्रिया के चरित्र में इतनी खुद्दारी है कि वह आने वाली स्त्री का पूर्वाभास लगती है। लेकिन उससे भी ज्यादा वह नारी की त्रासदी और संकल्प का एक प्रामाणिक दस्तावेज लगती है। इस उपन्यास में पुरुष सत्ता का निरपेक्ष प्रतिकार है। लेकिन प्रिया अपने परिवार के सुख से वंचित हो कर भी आत्मविश्वास से भरपूर है। 'जिन्दगी को झेल नहीं रहीं, बल्कि हंसते हुए जी रही हूं।'[29]

'छिन्नमस्ता' की तरह ही 'अपने अपने चेहरे' बोल्ड और सेक्स जीवन तथा प्रेम और शादी जैसे मुद्दों पर केन्द्रित है। उसका दर्शन है कि 'क्या बिना पुरुषों के औरत अधूरी है? क्या सारे अस्तित्व का सन्दर्भ केवल पुरुष है? अपने आप में वह कुछ भी नहीं? यानी उसकी अपनी कोई भूमिका नहीं?'[30]

मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' और 'आप का बंटी' जैसे महत्वपूर्ण उपन्यास हिन्दी साहित्य को दिया है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में स्त्री पुरुष के द्वन्द्वात्मक संबंधों को दिखाया गया है।

`आपका बंटी` में तलाक की त्रासदी के बीच असहज सा जीवन जी रहे पति पत्नी और उन के इस तनाव के बीच पिस रहे उन की संतान बंटी के मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को दिखाया गया है । `यही सच है` की नायिका पारंपरिक पत्नी धर्म-बोध से मुक्त हो गयी है जिसमें केवल पति व्रता धर्म ही उसके जीवन का प्रमुख सार था । विवाहित होते हुए भी किसी पर-पुरुष से प्रेम करना पति-व्रता भंग नहीं है । इसी प्रकार `ऊंचाई` की शिवानी लम्बे वैवाहिक जीवन के बीत जाने और मां बन जाने के बावजूद अपने प्रेमी से जुड़ती है । वस्तुत: पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के बीच अन्त:संघर्ष को मन्नू भण्डारी की रचनाओं में प्रमुख स्थान दिया गया है । प्रेम, विवाह, तलाक उनकी रचनाओं के केन्द्र में है । उनकी मान्यता है कि "मैं नारी को उसके घुटन से मुक्त करना चाहती हूं । उसमें बोल्डनेस देखना चाहती हूं । ... और देखिए, बोल्डनेस दृष्टि में होनी चाहिए, वर्णन में नहीं... ।"[31]

मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं की विशिष्टता है कि वे स्त्री-पुरुष के जटिल संबंधों का चित्रण करती हुई मध्यवर्गीयता के दायरे को तोड़ती हैं । वे व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक फलक पर अपने चरित्रों को रचती हैं । मैत्रेयी पुष्पा की विशेषता यह है कि वह उन पात्रों के द्वारा नारी अस्मिता के प्रश्न को रखती हैं । उनके पात्र ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि के होते हैं । आंचलिकता की महक सहज उनकी रचनाओं में अपना स्थान पाती है । विशेष कर बुन्देलखण्ड के आस-पास का क्षेत्र । लोक-भाषा साहित्यिक भाषा की घुलावट उनकी शिल्प शैली में मिलती है । `इदन्नम्` उनका नवीनतम चर्चित उपन्यास है । कलेवर के स्तर पर `इदन्नम्` ग्रामीण समाज की दुर्दशा, अंधी आस्थाएं, परस्पर घृणा तथा प्रेम, सहकार और प्रतिकार, संघटन विघटन राजनीति, विकास के प्रश्न, अशिक्षा नारी शोषण के विभिन्न रूपों को दर्शाता है । यह जीवन अपनी सम्पूर्णता में है । मंदा, प्रेम और बऊ, इन तीन पात्रों के माध्यम से एक भूखण्ड की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक जटिलताओं को जीवन्त रूप में उभारा गया है ।

`इदन्नम्` उनका नवीनतम और चर्चित उपन्यास है । इस उपन्यास में बलात्कार और उससे जुड़ी सामाजिक मान्यता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है । उपन्यास का एक चरित्र, मैला मास्टर बऊ के साथ बलात्कार करता है । बऊ अत्यन्त गहरे अवसाद का शिकार हो जाती है तो कुसुमा भाभी तर्क देती है, "जो तुम ने किया नहीं, उस के लिए अपने को दोषी क्यों मानना..." ।[32] कुसुमा के शारीरिक सम्बन्ध अपने जेठ से हैं । वह गर्भवती भी हो जाती है । पर वह इसे छुपाती नहीं । वस्तुत: इदन्नम् परंपरागत स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और उससे निर्मित सामाजिक मान्यताओं के ताने-बाने की रचना के स्तर पर चुनौती देता है ।

`इदन्नम्` उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की गहराई की तह में जाकर जांच पड़ताल की गयी है । असमान सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध स्वाभाविक रूप से असामान्य हो जाते हैं ।

मृदुला गर्ग हमारे दौर की अत्यन्त चर्चित रचनाकार हैं । स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर उनकी अपनी एक दृष्टि है । `मैं और मैं` के बाद उनका उपन्यास कठगुलाब आया है । इस उपन्यास में स्मिता, मारियान नर्मदा, असीमा और नीरजा - इन पांच प्रमुख स्त्री पात्रों और विपिन नामक प्रमुख पात्र की कहानी कही गयी है । इनके अतिरिक्त कई अन्य स्त्री-पुरुष पात्र आए हैं, लेकिन वे सब गौण हैं । इन पात्रों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे सभी असामान्य हैं । उनमें एक भी सहज और सामान्य पात्र नहीं है ।

इस उपन्यास के चरित्रों को असामान्य बनाने वाली परिस्थितियां हैं । ये सभी असहज वातावरण में पले-बढ़े हैं । स्मिता के मां-बाप का बचपन में देहान्त हो गया । इसीलिए उसे मजबूर होकर अपनी बड़ी बहन नमिता और उसके पति के साथ रहना पड़ता है । उसका जीजा स्मिता के साथ अश्लील हरकतें करता है । वे यह सब मजबूरी में स्मिता बर्दाश्त करती है ।

लेकिन तब हद हो जाती है जब उसका जीजा तेज रोशनी में शीशे के सामने उसके साथ बलात्कार करता है । स्मिता घृणा से भर जाती है । वह वहां से भाग कर अमेरिका चली जाती है । वहां पर मनोचिकित्सक जारविस से विवाह कर लेती है । वह उसका गर्भपात करता है । किन्तु जारविस स्वयं असामान्य चरित्र है । अत: यह सम्बन्ध भी बीच में ही टूट जाता है । वह सताई हुई स्त्रियों की संस्था `रा` में पहुंचती है । उसकी मुलाकात उन स्त्रियों से होती है जो स्त्रीवादी हैं और पुरुषों से घृणा करती हैं ।

उपन्यास की एक अन्य स्त्री पात्र मारियान भी असामान्य है । इसके लिए दो व्यक्ति मूलत: उत्तरदायी हैं । एक उसकी रूपवती मां वरजनिया, जो, जिसमें रूपगर्विता और संपत्ति-मोह असामान्य है— पति की मृत्यु के बाद वह एक अन्य सम्पन्न पुरुष से विवाह करती है । मारियान पूर्णत: उपेक्षित रहती है । वह मां-बाप के प्यार से वंचित अकेलेपन में संत्रास से पीड़ित रहती है । मारियान का पति इरविंग ह्विट्मैन उसके शोधों का उपयोग करके `वूमन आफ द अर्थ` नामक उपन्यास लिखता है और खूब यश और पैसा कमाता है । वह तलाक ले कर एक तलाकशुदा गैरी कपूर से शादी करती है जो बाल-बच्चेदार है । वह मां बनना चाहती है, लेकिन उसकी यह इच्छा पूरी नहीं होती है । वह उपन्यास लिखती है और थोड़ा संतोष का अनुभव करती है । इसी प्रकार की असहजता अन्य स्त्री-पुरुष पात्रों - असीमा, नीरजा और विपिन में भी है ।

कठगुलाब के स्त्री पात्रों में मां बनने की बड़ी चाहत है । नमिता नर्मदा से शिकायत करती है कि वह उसे एक मिनट में अकेली छोड़ कर चली आई । नर्मदा कहती है --

`तुम काहे बात की इकली हो, बीवी । हम बांझ औरतों में एक तुम ही बाल बच्चेदार हो । बेटा-बेटी दोनों हैं तुम्हारे । तुम काहे

टसुए बहाओगी । रोना तो हमें चाहिए । मुझे असीमा बीवी को और तुम्हारी इस मेम बहन को भी, जिनका न बालक हुआ, न भतार रहा ।

'बस - बस', मैंने टोका, 'इसमें रोने की क्या बात है ?'

'बात है बीवी । बांझ औरतों को रोना जरूर चाहिए । न रोओ तो अगले जन्म में भी कोख वीरान हो जावे है ।' उसने कहा ।

'चुप रहोगी कि नहीं,' मैंने फटकारा जरूर, पर जाने क्या हुआ कि हम तीनों औरतें फूट-फूट कर रो दीं ।'[33]

आधुनिकता बोध स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की दृष्टि से लाभदायक तो है, लेकिन अगर आधुनिकता को 'अंधी वैयक्तिकता' के रूप में ग्रहण किया जाएगा, तो इससे व्यक्तिगत स्तर पर जीवन विकृत हो सकता है । पुरुष के साथ समानता प्राप्त करने का तात्पर्य यह नहीं होना चाहिए कि उसमें 'सहज स्तर' का स्त्री-पुरुष सम्बन्ध ही टूट जाए ।

नासिरा शर्मा का लेखन मुस्लिम सामाजिक ढांचे में स्त्री की हीन सामाजिक दशा का आकलन करता है। यह एक तथ्य है कि मुस्लिम समाज महिलाओं की स्थिति की दूसरे समुदायों की महिलाओं की सामाजिक स्थिति से ज्यादा उत्पीड़नकारी है । नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' रूढ़िगत मुस्लिम परिवेश में, नायिका महरुख के सामाजिक संघर्ष का चित्रण करती है । आततायी पति से मुक्त होकर वह स्वयं अपना घर बनाती है जो केवल उसका है । उसे कोई भगा नहीं सकता ।

इसी प्रकार मेहरुन्निसा परवेज की 'अकेला पलाश' की जागरूक नायिका तहमीना सामाजिक सुधार के कार्यों से पहले से ही जुड़ी हुई है । वह अपने आसपास की उत्पीड़ित स्त्रियों की समस्याओं को सहानुभूति से समझने की कोशिश करती है । उनका संबल बनती है । अपने दाम्पत्य से असन्तुष्ट क्षुब्ध नितान्त अकेली तुषार का भोगवादी और पलायनवादी दृष्टिकोण उसे नयी चुनौतियों के बीच ला कर खड़ा करता है । गहरी

मानसिक पीड़ा से दु:खी तहसीना अपनी ही कोशिशों से उबर एक नयी जिन्दगी की शुरुआत करती है ।

`ममता कालिया` का लेखन अत्यन्त धारदार और तेवरपूर्ण है । `एक पति के नोट्स` में पूर्णतया आत्मविश्वास से परिपूर्ण और सक्रिय पत्नी को न झेल पाने वाले पुरुषकेदम्भ का चित्रण किया गया है । ममता का विवाह एक आई. ए. एस. अधिकारी से हुआ है जो कि मानसिक स्तर पर नौकरशाह पति के साथ सामंजस्य स्थापित करने में असफल होती है । परन्तु वह घर के महत्व को समझती है । अत: स्वयं समझौता करने को तैयार रहती है ।

ममता कालिया का दूसरा उपन्यास `बेघर` अपनी सामाजिक चेतना में अद्वितीय है । कौमार्य के परम्परागत मिथक को यह उपन्यास तोड़ता है । बेघर का परमजीत एक आम जिन्दगी जीता है और एक आम मौत मरता है । परमजीत का प्रेम प्रसंग - जो अचानक टूट जाता है - आम जिन्दगी के प्रश्न को सामने लाता है । परमजीत और संजीवनी का सम्बन्ध `चेस्टिटी` या कौमार्य के मिथक को बुरी तरह झकझोर देता है ।

गीतांजलिश्री नई लेखिका हैं । उनका सद्य:प्रकाशित प्रथम उपन्यास `माई` पारिवारिक ढाचे में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पड़ताल करता है । `माई` उपन्यास माई को घर की देहरी से बाहर निकालने का सतत प्रयास है । कथा की नैरेटर मैं (सुनैना तिवारी) एक स्तर पर अपनी पिछली पीढ़ी की देहरी से निकलने के लिए सतत प्रयास करती है । वह डरती भी है कि कहीं वह इस प्रयास में देहरी में ही न फंस जाए । नारी मुक्ति के अनेक प्रश्न `माई` उपन्यास-लेखिका ने उठाए हैं । पत्नियां पतियों के लिए व्रत तो रखती हैं, पर पति पत्नियों केलिए क्यों नहीं ? दुपट्टा क्यों जरूरी है ? स्त्री और पुरुष के बीच आखिर सेक्स और प्रेम के सम्बन्ध में खुली बात क्यों नहीं हो सकती ? भाई-बहन में खुलापन क्यों नहीं ?

मासिक धर्म और अपवित्रता का सवाल, विवाह में चयन की आजादी, शुचिता की अवधारणा आदि प्रश्नों को लेखिका ने तल्खी के साथ उठाए हैं ।' ... मासिक धर्म आने पर उसे घर भर में अस्पृश्य करार दे दिया गया ... जो मां बन सकती है, वह अपवित्र कैसे ?'[34]

उपरोक्त विवरण में आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ जाने-माने रचनाकारों की रचनाओं को लिया गया है जिससे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं । पुरुष एवं महिला रचनाकारों द्वारा रचित साहित्य की संवेदना में कुछ अन्तर जरूर है । नि:सन्देह प्रेमचंद, अज्ञेय, जैनेन्द्र, निर्मल वर्मा आदि ने जो कुछ लिखा है, उसमें कुछ छोटे-बड़े अन्तर्विरोध हैं । इन रचनाकारों का लेखन कहीं न कहीं पुरुष मानसिकता को ही प्रभावी समर्थन देता नजर आता है जबकि महिला रचनाकारों की रचनाओं में ऐसी धार है जिसमें संगठित और स्पष्ट रूप से पुरुष अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध आक्रोश एवं विद्रोह की भावना व्यक्त की गयी है । सभी महिला रचनाकारों ने मुख्यत: प्रेम, सेक्स, तलाक आदि मुद्दों को केन्द्रीय विषय-वस्तु बनाया है जिसके माध्यम से कहीं तो पुरुष सत्ता निरपेक्ष या कहीं पुरुष सत्ता सापेक्ष नारी अस्मिता का निर्माण करती है । पुरुष वर्चस्व वाला सामाजिक और पारिवारिक संगठन ही स्त्रियों की बहुआयामी दुर्दशा का कारण है । यह स्वर लगभग सभी रचनाकारों की रचनाओं में मिलता है ।

लेकिन कृष्णा सोबती का लेखन विलक्षण है । वह भी स्त्री की मुक्ति का पक्ष लेती हैं । लेकिन उनके लेखन में कहीं भी घोषित रूप से स्त्रियों को पुरुषों के विरुद्ध आक्रोश या विद्रोह की भावना से उद्वेलित होते हुए चित्रित नहीं किया गया है । इसका आकलन हम दूसरे अध्याय में करेंगे ।

संदर्भ

1. राजेन्द्र यादव : एक दुनिया समानांतर, पृ0 32
2. सर्वपल्ली एस. राधाकृष्णन् : धर्म और समाज, पृ0 184
3. सीमोन बोउवार : स्त्री उपेक्षिता (द सेकेण्ड सेक्स) का हिन्दी रूपान्तर (प्रभा खेतान), हिन्द पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृ0 56-57
4. वही, पृ0 240
5. चित्रा मुद्गल : स्त्री का आत्मबोध : साक्षात्कार, जुलाई/अगस्त, 1996, पृ0 41
6. प्रेमचंद : मानसरोवर, भाग 2, पृ0 19
7. जवरीमल्ल पारख : संस्कृति और समीक्षा के सवाल, पृ0 116
8. प्रेमचंद : गोदान, पृ0 167
9. अज्ञेय : शेखर एक जीवनी (भाग 2), पृ0 16
10. मोहन राकेश : अन्धेरे बंद कमरे, पृ0 153
11. वही, पृ0 317
12. नरेश मेहता : दो एकांत, पृ0 29
13. गिरिराज किशोर : यात्राएं, पृ0 12
14. केवलसूद : मुर्गीखाना, पृ0 26
15. निर्मल वर्मा : वे दिन, पृ0 207
16. वही, पृ0 226
17. विजय मोहन सिंह : आधुनिक हिन्दी उपन्यास में प्रेम की परिकल्पना, पृ0 403
18. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ0 148
19. आशा जोशी : हजारीप्रसाद द्विवेदी का नारी विषयक दृष्टिकोण, पृ0 101
20. हजारीप्रसाद द्विवेदी : बाणभट्ट की आत्मकथा ।

21. हजारीप्रसाद द्विवेदी : पुनर्नवा, पृ0 119
22. सुरेन्द्र वर्मा : मुझे चांद चाहिए, पृ0 547
23. प्रभा खेतान : दो उपन्यास और नारी का आत्मसंघर्ष
हंस / जून / 1994 / पृ0 64
24. चन्द्रा सदायत : साहित्य में स्त्री दृष्टि : हंस, अक्टूबर / 1994 / पृ0 36
25. महादेवी वर्मा : रोल आव वुमेन इन द न्यू डिकेड 1960 (भाषण) -थ्री जनरेशन आव वुमेन राइटिंग इन इण्डिया (गगन गिल) बुक रिव्यू, वाल्यूम 21, नवम्बर 1997, पृ0 24
26. महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियां, पृ0 74
27. वही, पृ0 14
28. प्रभा खेतान : स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोध - हंस / अक्टूबर / 1996 / पृ0 75
29. प्रभा खेतान : छिन्नमस्ता, पृ0 25
30. प्रभा खेतान : अपने अपने चेहरे, पृ0 101
31. वंशीधर और राजेन्द्र मिश्र : मन्नू भंडारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ0 101
32. मैत्रेयी पुष्पा : इदन्नमम्, पृ0 100
33. मृदुला गर्ग : कठगुलाब, पृ0 194
34. गीतांजलि श्री : माई, पृ0 53-54

अध्याय - 2

कृष्णा सोबती की रचनाओं में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का स्वरूप

कृष्णा सोबती की रचनाओं में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप

कृष्णा जी के लेखन का समय आजादी के बाद का दूसरा दशक है। स्त्री-मुक्ति आन्दोलन की दृष्टि से साठ का दशक पूरे विश्व में अपना अलग महत्व रखता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सम्पन्न औद्योगिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक विकास ने नैतिकता और मर्यादा के प्रतिमान को बदल दिया। यह परिवर्तन पारिवारिक ढांचे में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में भी दिखायी पड़ता है। विवाह, तलाक, सैक्स, प्रेम, विवाहेत्तर-प्रेम के प्रतिमान बदलने लगे। ऐसे बदले हुए सामाजिक वातावरण में कृष्णा जी ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को अपने उपन्यासों में अपनी खास दृष्टि से रूपायित किया है। नारीवाद के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी में कुछ महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का चित्रण, पुरुष के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि सामाजिक और पारिवारिक ढांचे के विरुद्ध संघर्ष करते हुए किया है। उदाहरण के लिए हाल के वर्षों में प्रभा खेतान का नवीनतम प्रकाशित और बहुचर्चित उपन्यास 'छिन्न मस्ता'। उपन्यास की नायिका प्रिया अपनी हर कठिनाई और मुसीबत के लिए पुरुष को उत्तरदायी मानती है। अन्त में संघर्ष करते हुए वह अकेली पड़ जाती है। लेकिन कृष्णा जी के नारी पात्र घर-गृहस्थी के महत्व को स्वीकार करते हैं। उनकी मूल चिन्ता घर गृहस्थी की सीमाओं में सम्मान के साथ सुख भोगने की समान भागेदारी, न कि विद्रोह। 'उन्होंने शायद ही अपने किसी लेखन में आदमी को अपराधी या गलत बता कर औरत की स्थिति का वर्णन किया हो, या उन के व्यक्तित्व या नियति के लिए पुरुष को जिम्मेदार ठहराया हो।'[1]

कृष्णा जी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के परंपरागत ढाचे को स्त्री के लिए उपयुक्त नहीं मानती हैं। वह घर-परिवार की संस्था के महत्व

को जानती है । यह भी कि स्त्री मुक्ति एक सापेक्ष अवधारणा या स्थिति है । नारी को आखिर रहना है पुरुष के ही साथ । अत: घर-परिवार के पुराने ढांचे को नयी आवश्यकताओं की मांग के अनुसार पुनर्गठित किया जाना चाहिए । उनके नारी पात्र यही चाहते हैं । गृहस्थी के महत्व के बारे में कृष्णा जी का कहना है कि "अगर हमें कभी भी अपनी गृहस्थी जुटानी होती तो घर में सबसे पहले लगती तंदूर मिट्टी के बर्तनों की लगती कतारें, थालियों में गूंथती आटा । चंगेरों में रखती घी-सनी रोटियां । और सोंधी गंध वाले सालन, पकाती मैं हंडिया में । मेरे घर में दूध-बिलोने की चाटियां होतीं । पानी भरने के घड़े । बैठने को होती रंगीली पीढ़ियां और पसरने को होती सुतली की मंजियां ।"[2]

घर-गृहस्थी के प्रति इसी प्रेम और आस्था ने उन्हें अतिवादों से बचाए रखा है । लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे स्त्री को गुलाम बनाने वाली, रूढ़ियों और परंपराओं की समर्थक हैं । वे घर-परिवार को, रूढ़ियों और हानिकारक परंपराओं से परे ले जा कर उसके महत्व की परीक्षा करती हैं । 'मित्रो मरजानी' की मित्रो, 'दिलो-दानिश' की महक और कुटुम्ब सभी परिवार में भरपूर सुख और शान्ति के लिए, उसमें अपनी बराबर की भागेदारी के लिए संघर्षरत दिखाई पड़ती हैं । घर-गृहस्थी पर उनकी आस्था स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को एक विशिष्ट रूप प्रदान करती है । यदि उनकी नारियां घर के शोषण, अत्याचार, से पीड़ित हो कर घर छोड़ कर भागती हैं, तो एक शान्तिमय और सुख-सुरक्षा प्रदान करने वाले घर की तलाश की इच्छा भी उन में हमेशा बनी रहती है । उनकी रचनाओं में स्त्री के व्यक्तित्व का निरन्तर विकास होता दिखाई पड़ता है । ऐसा लगता है कि एक ही नारी अलग-अलग नामों से अगली रचना में अपने बदले हुए तेवर के साथ उपस्थित है । देखा जाए तो रचना-कर्म के स्तर पर यह एक जटिल चुनौती है ।

'डार से बिछुड़ी' की पाशो सामंती घर परिवार के उत्पीड़न का शिकार हो, घर की चहारदिवारी के बाहर कदम रखते ही आधार-विहीन हो जाती है । स्त्रियों की पाशो जवान होती है, तो उसे तरह-तरह के सामाजिक लांछन झेलने पड़ते हैं । क्योंकि उसकी मां शेखों के यहां रखैल थी । इसीलिए पाशो को लेकर, नानी, मामा, मामियां अतिरिक्त सावधान और सशंक हो जाते हैं । गाली-गलौज , कुटना-पिसना दिन-चर्या बन जाती है । परिवार वालों को लगता है कि जवान हो रही पाशों के भी पर निकल रहे हैं । अत: उसे हमेशा प्रताड़ित-ढंग से नियन्त्रण में रखने की कोशिश की जाती है । यहां तक उसे जहर दे कर हत्या करने की भी कोशिश की जाती है । उसे मेले में बेचकर उससे निजात पाने का भी प्रयत्न किया जाता है । पाशो इन उत्पीड़नों से बचने के लिए घर छोड़ कर भाग जाती है । पहले हवेली में मां के पास, फिर वहां से दिवान जी के यहां । एक तिनके की तरह पाशो, इधर-उधर भागती रहती है । एक जगह से दूसरी जगह मानो पाशो व्यक्ति न होकर कोई चीज हो जिसको जब मन हो उठा कर ले जाए, उसका मन-चाहा सौदा करे, बिस्तर गर्म करे और वंश चलाने के लिए संतान पैदा करे ।

लेकिन पाशो हर जगह जिन्दगी की तलाश में, सामंजस्य बनाने का प्रयत्न करती रहती है । वह बीवी, बहन, रखैल बन कर जीवन जीती है । खरीदी, बेची जाती है । ऐसे घृणित उत्पीड़न युक्त जीवन को अपनी नियति स्वीकार कर, वह सिर्फ बीते सम्बन्धों को याद करके थोड़ा संतुष्ट होती है ।

'सूरजमुखी अंधेरे के' कृष्णा सोबती की महत्वपूर्ण रचना है । स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में बोल्डनेस की दृष्टि से इसका महत्व श्लाघनीय है । सेक्स को लेकर जो कृत्रिम नैतिकता का बोझ, समाज और साहित्य दोनों में अभी दिखाई पड़ता है, उसका पर्दाफाश इस कृति में किया गया है । सेक्स सम्बन्धों को केवल नारी की नैतिकता दृष्टि से देखने पर दृष्टि

अपूर्ण ही रहती है । नैतिकता कोई स्त्री सापेक्ष धारणा नहीं है । इसमें पुरुष की भी समान भागेदारी रहती है । इसी जटिल सामाजिक और भावात्मक पक्ष पर इस रचना में प्रकाश डाला गया है ।

सेक्स प्रेम का पूरक और अनुवर्ती तत्व माना जाता है । परन्तु प्रेम रहित सेक्स को परम वर्जित माना गया है । अनैतिक, अवैध और व्यभिचार रूप में वह अपराध माना जाता है । `सूरजमुखी अन्धेरे के ` की विशेषता यह है कि इस उपन्यास में सेक्स अपनी निजी सत्ता धारण करता है । जो कि हर प्रकार के अपराध बोध से मुक्त है । यहां स्त्री केवल स्त्री है और पुरुष केवल पुरुष, जो अपने समग्र अस्तित्व और व्यक्तित्व के साथ जीवन को सम्पूर्ण रूप से जीने के लिए तत्पर है । रत्ती और दिवाकर ऐसे ही स्त्री-पुरुष हैं ।

उपन्यास के केन्द्र में है रत्तिका । उसके जीवन में चारों-तरफ केवल खालीपन है । इस रिक्तता के कोष्ठकों को भरने के लिए वह समूची औरत बनने की कोशिश में लगी रहती है । सम्पूर्ण स्वस्थ शरीर और सुन्दर देहयष्टि वाली रत्ती को इंतजार है उस पुरुष की जो उसके भीतर ठण्डी पड़ी औरत को गर्मी देकर फिर तरोताजा कर दे । और उसे पूरी स्त्री बना दे ।

इस इंतजार के दौरान रत्तिका के जीवन में कई पुरुष आते हैं । सब के साथ वह अलग अलग धरातल पर संबंध बनाती है । लेकिन कोई भी उसके अन्दर सोई हुई औरत को जगा नहीं पाता है । इन पुरुषों में रंजन, रोहित, ओमी, बाली, डेविड, भानुराव, सुब्रह्मनियम, जयनाथ, राजन आदि हैं । रत्तिका सभी पुरुषों में एक पुरुष की तलाश करने की कोशिश करती है ,जो उसे सम्मान और प्यार दोनों दे सके । लेकिन हर कोई आंशिक स्तर पर ही सफल हो पाता है । रत्तिका के जीवन में घटी एक त्रासदी ने उसके व्यक्तित्व के जैविक स्वरूप को ही बदल डाला । जब भी वह किसी

के साथ सोती है, तब एक भय उसे दबोच लेता है और वह जड़ बन जाती है...'वह एक काला जहरीला क्षण हर बार मुझे झपट लेता है और मैं काष्ठ हो जाती हूं।'[3] वस्तुत: रत्ती जब बच्ची ही थी और स्कूल में पढ़ती थी, तभी किसी ने उसके साथ बलात्कार किया था। उसे उस घटना की विभीषिका रह-रह कर झकझोर देती है। 'वह हवा घर... ... वह भद्दा चेहरा... वह नीचे पटकता हाथ।..'[4] ऐसी रत्ती एक फीकी फीकी और ठंडी औरत बन कर रह गयी। रत्ती को हर बार सत्य इसी कटु रूप में उपलब्ध होता है। हर बार कहीं पहुंच सकने की इच्छा उसे बार-बार उसी काले जहरीले क्षण में ला पटकती है। 'वस्तुत: रत्तिका नामक इस स्त्री ने कभी किसी को नहीं पाया और न ही किसी ने रत्तिका को पाया। रत्तिका वह सड़क है, जिसका कोई किनारा नहीं। वह अपनी ही सड़क का आखिरी छोर है।'[5]

ऐसे ही सुनसान क्षण में रत्तिका के जीवन में दिवाकर का आगमन होता है। दिवाकर को रत्तिका अपनी ही दौड़ की लगी। वह रत्तिका को जानता नहीं था, किन्तु जान सकता था। वह पहला ही था जिस ने ऐसी कोई मांग नहीं की कि जिसकी पूर्ति रत्तिका न कर सके। रत्तिका कभी स्वयं ही सड़क का डेड-एण्ड थी, उसे एक मंजिल दिवाकर के रूप में मिलती है। दिवाकर रत्ती को एक समूची औरत बनाता है और रत्तिका दिवाकर के द्वारा अपने आप को पाती है।

देखा जाए तो रत्तिका और दिवाकर प्रेमी प्रेमिका नहीं है। शरीर संवेग का समान धरातल उन्हें देह के स्तर पर मिलता है। यहां पर सैक्स की कुंठित ग्रंथि खुल कर टूट जाती है। इसके परिणामस्वरूप एक स्त्री के रूप में रत्तिका को नयी जीवन गति प्राप्त होती है। रत्तिका और दिवाकर का आकर्षण शुद्ध रूप से दैहिक आकर्षण पर आधारित है, परन्तु सैक्स की संतुष्टि द्वारा रत्ती सहज मनुष्य बनने की ओर अग्रसर होती है। यहां पर सैक्स की आदिम सहजता के माध्यम से मनुष्यता की

प्राप्ति का संकेत है । स्त्री जो सहज मनुष्य बनने की ओर अग्रसर होती है, वही सेक्स की आदिमता को पीछे छोड़ जाती है । यहां सेक्स आत्म-रेखांकन का सशक्त उपकरण बन जाता है । दिवाकर के साथ संबंधों में, रत्तिका सेक्स ग्रन्थि से मुक्त हो जाती है ।

इस प्रकार से हिन्दी कथा साहित्य में किशोरीलाल गोस्वामी और देवकीनंदन खत्री से कृष्णा सोबती तक हम प्रेम की बदलती परिकल्पना और उसमें समाज की परिवर्तित भूमिका को देख सकते हैं । बीच में प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा जैसे महत्वपूर्ण पड़ाव हैं । कभी किशोरीलाल गोस्वामी और देवकीनंदन खत्री के उपन्यास शुद्ध प्रेमकथा थे जहां स्त्री-पुरुष परस्पर आकर्षण अनुभव करते हुए समर्पण और निष्ठा के द्वारा एक दूसरे को पाते हैं । परन्तु इन सम्बन्धों में विवाहेत्तर सम्बन्धों का कोई स्थान नहीं है । विवाह द्वारा ये सम्बन्ध अनिवार्य रूप से सामाजिक मान्यता प्राप्त करते हैं । यद्यपि इन प्रेम-कथाओं में थोड़े-बहुत सामाजिक अवरोध का सामना करना पड़ता है । इनकी कृतियों में विवाहेत्तर देह सम्बन्ध अवैध माने जाते हैं जो अंत में अपनी सजा पाते हुए दुनिया से विदा लेते हैं । प्रेम में देह की उपस्थिति सिर्फ वियोग वर्णन में होती है ।

'मित्रो मरजानी' कृष्णा जी का अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास है । मित्रो का चरित्र हिन्दी उपन्यास में ही नहीं, बल्कि वास्तविक ज़िंदगी में एक चुनौती बन कर उपस्थित होता है । यह चुनौती प्रकाशन के समय से लेकर आज तक बनी हुई है और आने वाले भविष्य में भी बनी रहेगी । मित्रो 'डार से बिछुड़ी' की नायिका पाशो के चरित्र का निषेध ही नहीं, शायद उसका जवाब भी है । मित्रो बेहद दबंग, बेबाक और बीहड़ लगती है । वह अपना सिर उठा कर दकियानूस समाज और पुरुष को ठेंगा दिखाती है । उसके अन्दर इतनी गरिमा और ऊर्जा है कि वह अपनी शारीरिक जरूरतों को अपने मुंह से कह सकती है ।

यह कृष्णा जी की लेखन शैली की विशेषता है कि पुरुष के खिलाफ बिना कुछ लिखे उसकी परंपरागत हैसियत को वह छोटा कर देती है । मित्रो के नये तेवर के सामने, सास, ससुर, संबंधी ही नहीं, उसका पति सरदारीलाल भी कद में छोटा पड़ जाता है । मित्रो के चरित्र और उसके तेवर को लेकर जो तूफान उठा था, उसका कारण सिर्फ यही था कि मित्रो हिन्दी कथा साहित्य की पहली एकमात्र नारी है जो अपनी शरीर की सेक्स जरूरतों को अपनी जुबान से कहती है । वह अपनी ही भाषा में अपने होने की घोषणा करती है । वह पुरुष निर्मित सभी संबंधों और मर्यादाओं को हिकारत भरी दृष्टि से देखती है । मित्रो हिन्दी की अकेली ऐसी नारी है जो सदियों से नारी पर लादे गए सारे संस्कारों, संबंधों, और सुन्दर-सुन्दर उपमाओं को ललकारती, मुंह चिढ़ाती और उन्हें झुठलाती हुई अपनी मूलभूत जरूरत और जुबान के साथ हमारे सामने छिन्नमस्ता की तरह खड़ी हो जाती है । जिसे मर्यादा प्रेमी पुरुष समाज बर्दाश्त नहीं कर पाता है । कहां पाशो और शाहनी जैसी और सब कुछ बर्दाश्त करती नारियां, कहां मन्नो और जया जैसी भावनाओं और सपनों में घुलती मिटती नायिकाएं और सास-ससुर, जेठानी-देवरानी, पति, सब को मुंह चिढ़ाती मित्रो । मित्रो का पति सरदारी लाल है, घर-गृहस्थी में व्यस्त । किन्तु सरदारी लाल, मित्रो के मेंच का नहीं है । वह पति से असंतुष्ट रहती है । वह परंपरागत पारिवारिक परिवेश में अपनी देह की तुष्टि के लिए मांग करती है ।

मित्रो की शरीर में भूख इतनी ज्यादा है कि सरदारी लाल उसको समझ नहीं पाता है । अपनी इलाही ताकत, रूप-यौवन पर मगरूर मित्रो की देह में इतनी प्यास है कि 'सौ घट भी थोड़े' [6] । मित्रो की शारीरिक प्यास को उसका ससुर भी समझता है । वह उसे 'जनरैली-नार' कह कर बुलाता है जो छोटे-छोटे मर्दों के वश के बाहर की चीज है । यद्यपि मित्रो का पति सरदारी लाल स्वस्थ है, लेकिन वह मित्रो के शब्दों में उसके रोग

को नहीं पहचानता ।' बहुत हुआ हफ्ते-पखवारे... और मेरी देह में इतनी प्यास, इतनी प्यास कि मछली-सी तड़पती हूं ।'[7]

मित्रो की रसिकता उसकी मां बालो की देन है । बालो जवानी में ही विधवा हो गयी थी । बालो के बड़े-बड़े अफसरों से संबंध थे । गोरी चिट्टी, सुन्दर मित्रो को मां के प्रेमी तहसीलदार का रंग रूप मिला और काली-कलूटी बालो से प्रेम का पाठ । विधवा मां के रसिक जीवन से रसिकता, प्रगल्भता, रूप की सत्ता की सजगता सीखी । फलत: सरदारी लाल जैसा सरल, गैर रसिक पति उसकी प्रणयाकांक्षा की तृप्ति नहीं कर पाता है । हां, अपनी हीनता को छिपाने के लिए जब-तब मित्रो को पीटता जरूर है ।

स्वाभाविक रूप से पति से असंतुष्ट मित्रो अन्य पुरुषों की तरफ आकर्षित होती है । उसका स्पष्ट तौर से कहना है कि जिस ईश्वर ने उसे यह रूप यौवन दिया है, उसने उसे भोगने का भी हक दिया है । इसी लिए एक बार वह मायके में अपनी ही मां के भूतपूर्व प्रेमी के साथ सोने के लिए तैयार भी हो जाती है । लेकिन बालो के हस्तक्षेप से वापस चली आती है । इस भूतपूर्व प्रेमी के पास जाते हुए बालो का दिल दिमाग ईर्ष्या से भर जाता है । यहां पर हम देखते हैं कि बालो और मित्रो का सम्बन्ध मां-बेटी का न होकर केवल स्त्री स्त्री का हो जाता है ।

बालो के चरित्र में एक खासियत थी । वह स्त्री थी, रमणी थी, मां थी, पर पत्नी न थी, वह पुरुषों को जानती थी, लेकिन पति को नहीं । बालो की इच्छा होती है कि ससुराल से असंतुष्ट मित्रो उसी की तरह पेशा करे । मित्रो इसे अस्वीकार कर देती है कि तू सिद्ध और भैरों की चेली । अब खाली कड़ाहों में मेरी और मेरे खसम की मछली तरेगी । सो न होगी ।'

वह अन्तत: वापस अपने पति के पास लौट आती है । वह विवाह की सीमा रेखा का उल्लंघन नहीं करती है । यद्यपि वह अपने पति से संतुष्ट नहीं रहती है ।

मित्रो में सेक्स की असन्तुष्ट प्यास है, जिसको वह स्वयं अपने मुंह से स्वीकार करती है । इस आदिम प्यास की अभिव्यक्ति कोई पाप नहीं है । न ही वह कोई अनैतिक है । मित्रो अपनी यौन असंतोष पर खुल कर बात करती है, लेकिन वह यौन-शुचिता की सीमा का अतिक्रमण नहीं करती है । पुरुष-वर्चस्व वाले समाज ने मर्यादा के नाम पर स्त्री की मूल-भूत जरूरतों पर कई पर्दे डाल रखे हैं । पुरुष अपनी शारीरिक आवश्यकता को अभिव्यक्त करता है तो बहादुर बन जाता है । लेकिन वही काम अगर स्त्री अपने पति-धर्म को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए भी करती है तो उसे अनैतिक और अमर्यादित कह दिया जाता है ।

बहुत लोगों को मित्रो का गर्म चरित्र स्वीकार्य नहीं । लेकिन भारतीय स्त्री के लिए मित्रो अपवाद ही सही, किन्तु एक मायने में स्त्री की स्व-चेतना का प्रस्थान बिन्दु तो कही ही जा सकती है । क्योंकि जिस समाज में अपनी व्याहता के रहते हुए यौन सन्तुष्टि में वैविध्य के आकांक्षी पुरुष को पर-स्त्रीगमन की मनचाही सहूलियत और मान्यता प्राप्त है, अलावा इसके स्वयं उसके लिए अपनी बिरादरी में सामाजिक प्रतिष्ठा, स्टेटस, सिंबल का प्रश्न हो - उस समाज में व्याहता द्वारा अपनी आदिम आवश्यकता के मानवीय अधिकार की मांग रख देना उनके पुरुषत्व का उपहास नहीं है क्या ?

'जिंदगीनामा' कृष्णा सोबती का अत्यन्त महत्वाकांक्षी उपन्यास है । इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर कोई स्पष्ट कथानक नहीं है । फिर भी इसका संक्षिप्त वर्णन आवश्यक जान पड़ता है । इस उपन्यास की मूल विशेषता है इसकी सघन आंचलिकता । यह किसी एक

व्यक्ति या व्यक्तियों का वृत्तान्त नहीं है । यह मूलत: एक समूह-गान की तरह एक पूरी जाति का समूह गान है । यह उपन्यास कथा अध्यायों में विभाजित न होकर छोटे-छोटे दृश्य खण्डों में विभाजित है । यह उपन्यास एक पूरी जाति, एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र - पंजाब की सामाजिक, सांस्कृतिक बुनावट की कहानी है । यह उपन्यास पंजाबी भाषा के शब्दों से युक्त है । यही उसे विशेष मिठास और आंचलिकता भी देता है । यहां इस उपन्यास में दो प्रेमियों के बीच, बड़े ही साहसपूर्ण ढंग से यौन-सम्बन्धों को दिखाया गया है ।

इस उपन्यास में आर्थिक-सामाजिक विषमता का भी चित्रण है, जो इसे कभी-कभी अपनी व्यापकता में महाकाव्यत्व भी प्रदान कर देता है । शाह परिवार के सामंती ठाट-बाट को वैयक्तिक प्रेम के साहस और छोटे वर्गों द्वारा चुनौती दी जाती है ।

अपने छोटे-बड़े उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बदलते समीकरणों की समीक्षा के साथ ही कृष्णा जी ने अपनी कहानियों में भी इसी बदलते रूप-रंग को चित्रित किया है ।

`सिक्का बदल गया है` विभाजन की त्रासदी से जुड़ी कहानी है । कहानी के केन्द्र में है नायिका शाहनी । विभाजन से पूर्व वह अत्यन्त संतुष्ट जीवन जीती है । घर, परिवार, संपत्ति, सभी उसे सुख देते हैं । लेकिन विभाजन की त्रासदी से जन्मा तूफान, अचानक उसे जड़-विहीन कर देता है । उसे सब कुछ छोड़ना पड़ता है । ट्रक में कुछ चीजें लाद कर हिन्दुस्तान लानी पड़ती हैं । लेकिन उसके प्राण सरहद पार ही रह जाते हैं । नयी कठोर वास्तविकता को वह स्वीकार नहीं कर पाती है । छूटते हुए घर, जमीन-जायदाद, खेत-खलिहान और सब से बढ़ कर सगे सम्बन्धी उसकी जिन्दगी के सुख को तार-तार कर जाते हैं । ऐसा लगता है, एक पूरी सामंती दुनिया में औरत केवल एक वस्तु है, जिसकी कोई पहचान नहीं, आधार नहीं है ।

ऐसा लगता है कि पाशो और शाहनी जैसे कभी अपनी जमीन से उखड़ी ही नहीं, बल्कि भटकने मंडराने लगी, वे जैसे हवा में उड़ते हुए तिनके हों ।

कृष्णा जी के कथा विकास में जमीन से टूटी हुई यह औरत `बादलों के घेरे` और `तिन-पहाड़` में भी दिखाई पड़ती है । यहां औरत का व्यक्तित्व ठोस रूप धारण करने के स्थान पर वायवीय है । लगता है ये औरतें केवल भावना हो, उच्छ्वास या मात्र अहसास हो । उनका व्यक्तित्व बादलों के धुन्ध की तरह ही कमजोर है, जो अन्य लोगों (पुरुषों) से जुड़ कर अपनी सार्थकता की तलाश करता है । यहां यह जुड़ाव शुद्ध रूप से पुरुषों के साथ होता है, जिनके घनिष्ठ सम्पर्क में आकर ये नारियां स्वयं को देखने का प्रयत्न करती हैं, जिससे उन्हें अपने होने का बोध होता है । यहां पुरुष सम्बन्धों की तलाश में भटकन इतनी अधिक अशरीरी और वायवीय और निराकार है कि लगता है कि शरीर को पाने की याचना करती आत्माएं भटक रही हों । इन स्त्रियों के व्यक्तित्व की तरह इनके आसपास का वातावरण भी धुएं, धुंध, बादल, बर्फ आदि से बना है, मानो ये सब छायावाद युगीन कविता के बिम्ब प्रतीक हों । और यह भी आकस्मिक नहीं लगता कि अपने वायवीय परिवेश की तरह दोनों कहानियों की नायिकाएं मन्नो और जया मृत्यु के प्रति समर्पित हैं । अपनी मौत से उपजे दुःख, त्रास को अपने साथी पुरुषों को भी समर्पित कर जाती है, जो स्वयं घुटते रहते हैं ।

इस प्रकार, `डार से बिछुड़ी`, `बादलों के घेरे`, `तिन-पहाड़` आदि की नायिकाएं पुरुष संसर्ग की तलाश में लगी रहती हैं । उनकी खोज में जिस पुरुष की तस्वीर होनी चाहिए, वह उन्हें नहीं मिलती है । देखा जाए तो कृष्णा जी की सारी रचनाओं में उनकी नारियां पुरुषों के प्रति घृणा-भाव नहीं रखतीं, बल्कि ऐसे पुरुष की खोज में तल्लीन दिखाई पड़ती हैं, जो उन्हें प्रेम, सम्मान और सुख दे सकें ।

`कुछ नहीं कोई नहीं ` और `दोहरी सांस` में प्रेम के दुर्निवार आकर्षण के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों की नयी जमीन की तलाश की गयी है। इस प्रेम आकर्षण में नैतिक मान-मूल्य बाढ़ के पानी की तरह बह जाते हैं। `कुछ नहीं, कोई नहीं" ` में दो गृहस्थितियों में बंटी शिवा नामक महिला की कहानी है। उसके पति का नाम रूप है। लेकिन वह शादी-शुदा और बाल-बच्चेदार प्रेम के आकर्षण में फंस जाती है। लेकिन अचानक आनंद की मृत्यु हो जाती है। कहानी शिवा की सामाजिक स्वीकृति के प्रश्न को गंभीरता से उठाती है। पति का घर छोड़ने के बाद, आनंद उसे घर लाने के बजाए होटल में रखता है। आनंद की मृत्यु के बाद वह आनंद के बच्चों के बीच स्वयं को अजनबी की तरह पाती है। उसके बच्चों को पुकारने के लिए शिवा के पास कोई शब्द नहीं मिलता है। इस कहानी में ऐसी स्त्री का चित्रण है, जिसे जीवन में कुछ भी हाथ नहीं लगता। पराये प्यार का झूठा अधिकार भी नहीं। कोई दावा तक नहीं।

`तिन-पहाड़` में भी प्रेम के इसी स्वरूप का चित्रण है। परन्तु इस में नायिका की परिणति आत्मघात में होती है। `दोहरी सांझ` में बया महेन्द्र के बेटे की मां है और संयोगवश इसी महेन्द्र की बेटी छाया के लिए वह अपने पुत्र अविनाश को विवाह की अनुमति दे देती है।

इस प्रकार स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के मामले में कृष्णा जी बड़ा बेबाक रुख रखती हैं। जाहिर है सामाजिक मान-मर्यादा और नैतिकता को चुनौती देने का परिणाम स्त्री को आजीवन भोगना पड़ता है, लेकिन इससे उनकी नारियां विचलित नहीं होती हैं। जीवन सुख की सतत खोज, उनकी नियति बन जाती है।

कृष्णा जी स्त्री को उसके पूरे सामाजिक सन्दर्भों के बीच अंकित करती हैं। वे दैहिक और लौकिक सुखों को छोटा करके देखने में यकीन नहीं करतीं। विशेष कर किसी आध्यात्मिक अनुभूति के नाम पर। 'बदली-बरस गई" की युवती कल्याणी अपनी साध्वी मां का रास्ता छोड़ कर फिर

अपने घर में वापस आ जाती है । घर-गृहस्थी का सुख पाने के लिए । यह महत्वपूर्ण है कि वह परिवार के उत्पीड़न से परेशान होकर घर से भागी थी । आश्रम में रहने के बजाए, वह लोगों से मुकाबला करते हुए, घर में रहने का साहसपूर्ण निर्णय लेती है । इसी वापसी में उसे अपना भविष्य दिखाई पड़ता है । इस प्रकार घर का आकर्षण यह इंगित करता है कि भौतिक सुख ही सत्य है । और यह सत्य केवल पुरुष संसर्ग से प्राप्त होता है ।

'ऐ लड़की' सोबती का अत्यन्त चर्चित लघु उपन्यास है जिसमें मां-बेटी के बीच संवाद के रूप में लिखित कहानी है । लेकिन यह संवाद दो पीढ़ियों के बीच न होकर दो मूल्य दृष्टियों के बीच होता है । इसके केन्द्र में बूढ़ी, मरती हुई मां और दुनिया जहान में कहीं एक अविवाहित प्रौढ़ा बेटी है । बुढ़िया बेहद खुद्दार और दुनिया देखी औरत है । बीमारी और बुढ़ापा मिल कर भी उसे तोड़ नहीं पाते हैं । वह बीमार की इज्जत का मान रखते हुए व्यर्थ चीख-पुकार और हाय-तौबा में विश्वास नहीं करती । तकलीफ बढ़ जाने पर उनके बारे में बोलना-बताना भी गुनाह है । बेहद आशावाद और बूंद बूंद जीवन में उसका विश्वास है । बात-चीत के बीच एक बार वह बेटी से पूछती है - शिमला गई हो ? जब बेटी भौंचक्की सी उसे देखती है तो अपनी बात साफ करते हुए वह समझाती है - चालान की प्रतीक्षा में गाड़ी बेरियर पर खड़ी है । चालान मिला और गाड़ी गई । ज़िंदगी के प्लेटफार्म पर चालान की प्रतीक्षा में पड़ी होने पर भी उसकी इंद्रियां अभी भी पूरी तरह चौकस और सजग हैं । सुबह की चाय अमृत होती है । पानी ढंग से उबाला गया हो, प्याला गर्माया गया हो और चाय ज़रा कड़क हो । अपने मातृत्व पर उसे गर्व है । इस प्रसंग में वह लड़की पर भी चोट करने पर बाज नहीं आती है । जब लड़की उसके दर्द सहने की क्षमता की प्रशंसा करती है, खास तौर पर अपनी कमजोरी की तुलना में, तो वह कहती है कि लड़की तुम्हें कैसे पता लगता है । और फिर वह विस्तारपूर्वक सृजन में निहित सुख के

सत्य को उसे समझाती है । सृजन का सुख औरत को कुदरत में बदल देता है । बेटी के पैदा होते ही मां सदाजीवी हो जाती है । वह किताबी ज्ञान को नकारती नहीं है । लेकिन वरीयता जिंदगी के अनुभवों से बने ज्ञान को देती है ।

'लड़की, पढ़ने और मनन करने से बुद्धि तेज जरूर होती है, पर जीवन जी कर ही उसमें अर्थ उत्पन्न होता है । फल का जीवन का सबसे बड़ा पुण्य है जनना अर्थात् सृजन सब से बड़ा फल है ।' अपने इस दुनियावी तर्क से वह जीवन को एक नया अर्थ देती है और अस्तित्ववाद सहित सारे निषेधवादी दर्शनों की व्यर्थता प्रमाणित करती है । आत्मा और देह मिल कर ही दुनिया का सपना बुनते हैं - अकेले की कोई बिसात नहीं । उसकी नजर में दुनिया में सुख और नेमतों की कमी नहीं है । बीमारी और बुढ़ापे में भी स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता । जिन्दगी के राग-विराग में उसे गहरी रुचि है । वह अभाव और निषेध का स्वयं में निषेध है । उसने लड़का और लड़की में कभी फर्क नहीं किया । लेकिन विवाह को वह स्त्री के लिए अनिवार्य-सा मानती है । उसे अहसास है कि औरत का वक्त तभी सुधरेगा जब वह अपनी जीविका स्वयं कमाएगी । वह एकदम खुले दिल से नर्स सूसन से उसके इरादों और इच्छा के बारे में पूछती है । और उसे समझाते हुए कहती है कि शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना । अपनी ताकत बनानी है । अपनी बेटी के साथ वह खुल कर सिगरेट पीती है क्योंकि उसे लगता है कि जो दिल में आए, उसे कर लेना चाहिए । जिंदगी किसी के साथ जीने में है । वह जानती है कि प्यार के संस्पर्श से ही जिंदगी जुड़ती है । वह उससे पूछती है कि लड़की, अपनी इकहरी यात्रा में क्या प्रमाणित करोगी ? कुछ भी नहीं । संग-संग जीने में कुछ रह जाता है, कुछ बह जाता है । अकेले में न कुछ रहता है, न कुछ बहता है । यह संसार ही अल्प है । इसके बाहर या परे कुछ भी सत्व नहीं है । वह कहती है कि लड़की, यही लोक है जहां मनुष्य हाथ से काम कर सकता है । ऊपर घर चूल्हे नहीं जलते हैं । न ही काया में अग्नि का स्फुरण होता है । किसने देखा है आंख से बैकुंठ धाम । तीर्थ यात्रा यहीं है, यहीं । कहीं और नहीं ।'

इस प्रकार इस छोटे से उपन्यास में मातृत्व, पुरुष-प्रेम की सहज स्वीकृति है ।

स्त्री की अस्मिता और मुक्ति का प्रश्न कृष्णा सोबती की मुख्य रचनात्मक चिंता रही है । प्रेमावेग की दुर्दमनीयता को वे गहरी आसक्ति के साथ अंकित करती हैं । सारे सामाजिक विधि-निषेधों के कूल-किनारों को ढहाता-बहाता वह थोड़ी देर को बुरे-भले की पहचान नष्ट करता हुआ आगे बढ़ता है । इसके बावजूद पुरुष के प्रति किसी भी प्रकार के असम्मान-जनक संकेत भी उन के यहां नहीं मिलते । न व्यक्ति की तरह, न हजार वर्षों की साजिश के प्रतिनिधि की तरह उनके पात्रों में न कहीं विद्रोही होने का दंभ दिखाई देता है और न ही किसी को छोटा करने का अहंकार । अपनी ही जिन्दगी को सुलझाते, उलझाते उनके पात्रों की सामाजिक मान्यताएं श्लील,-अश्लील, नैतिक,-अनैतिक कहीं कुछ है ही नहीं । उनके पात्र शायद ही कभी खुल कर मूल्यों की आलोचना करते चित्रित किए गए हैं । पुरुष पात्रों के प्रति उनकी नारी बेहद स्नेह रखती है । इससे केवल यही स्पष्ट होता है कि मानवीय लगाव के प्रति उनके मन में गहरी आस्था है । इनमें रिजेक्शन और अस्वीकार कहीं नहीं है । सिर्फ अपने विकसित और प्रस्फुटित होने के प्रति ही एकान्त निष्ठा है । उनके पात्रों को न तो जीविका की चिन्ता है न समय और समाज की । वे अपने समाज, संस्कृति और राजनीति के प्रश्नों से टकराती नहीं हैं । केवल अपनी बोल्ड जीवन-शैली से उसे प्रश्न के घटघरे में लाती हैं ।

सन्दर्भ

1. राजेन्द्र यादव — कृष्णा सोबती : खूबसूरत मुहावरे, नयी तुली शब्दावली
विद्याधर शुक्ल द्वारा संपादित 'हिन्दी आलोचना और आज की कहानी' में संकलित लेख । पृष्ठ: 36

2. वही

3. कृष्णा सोबती — सूरजमुखी अन्धेरे के, पृ0 92

4. वही,

5. परमानंद श्रीवास्तव : उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ0 149

6. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी, पृ0 95

7. वही, पृ0 95-96

अध्याय - 3

"दिलो-दानिश" उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप

(क) कृपानारायण और महकबानो के बीच सम्बन्ध
(पति और रखैल)

(ख) कृपानारायण और कुटुम्बप्यारी के बीच सम्बन्ध
(पति और पत्नी)

दिलो-दानिश उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप

स्त्री-पुरुष संबंधों की दृष्टि से दिलो-दानिश उपन्यास अत्यन्त आकर्षित कथा पर आधारित है । कथा नामी-गिरामी वकील कृपानारायण, उनकी विवाहिता कुटुम्बप्यारी और रखैल महकबानो के स्पंदनशील त्रिकोणिय संबंधों पर आधारित है । लोक चेतना में पति-पत्नी और रखैल का यह संबंध न केवल कुतूहल का विषय बनता है, अपितु तीखी सामाजिक आलोचना का भी । मानक सामाजिक प्रतिमानों की कसौटी पर इस तरह के संबंध न केवल अनैतिक बल्कि असामाजिक भी माने जाते हैं । लेकिन कृष्णा सोबती का उपन्यास दिलो-दानिश रचना के स्तर पर सामाजिक के बजाय व्यक्ति को महत्ता प्रदान करने के कारण 'रखैल' के मिथक और उसके द्वारा अपने औचित्य के लिए जुटाए गए तर्कों को विभिन्न स्तरों पर खण्डित करता है । वकील कृपानारायण अपनी पत्नी कुटुम्बप्यारी के साथ घरेलू और सामाजिक मर्यादाओं के कारण ज्यादा जुड़े हैं । उनके व्यक्तिगत प्रेम का आवेग महकबानो के साथ संबंध में परिलक्षित होता है । दोनों के बीच गहरा और आवेगमय प्रेम है । कृष्णा जी की रचनाधर्मिता की यह विशेषता है कि वे स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण प्रेम के अत्यन्त प्रगाढ़ और आवेगमय जीवन के साथ करती हैं । ऐसा ही प्रेमपूर्ण जीवन जीने और उसकी लालसा लिए उनकी 'नारियां' अपनी सामाजिक अस्मिता के नए कपाट खोलती हैं । प्रेम का आवेग ढीला पड़ते ही सामाजिक अस्मिता के लिए छटपटाता उनका व्यक्तित्व थोड़ा और आक्रोश मय हो जाता है । महकबानो और कुटुम्बप्यारी दोनों ही अपनी भिन्न-भिन्न शैली में अपने अपने विरोध को व्यक्त करती हैं । उपन्यास में हम देखते हैं कि उम्र के बढ़ने के साथ ही शारीरिक ऊर्जा का स्रोत धीरे-धीरे सूखने लगता है । तब वकील साहब महक पर नियंत्रण पाने में असफल हो जाते हैं । वकील साहब से दो संतानों

की मां महक अपनी और अपने बच्चों की सहज सामाजिक स्वीकृति के लिए विद्रोह की भावना से भर जाती हैं । यह महत्वपूर्ण है । महक धर्म और समुदाय से मुस्लिम है, जबकि वकील कृपानारायण, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, हिन्दू हैं । व्यक्तिगत स्तर पर, केवल मनुष्य होने के कारण जो संबंध और जटिलताएं महक और कृपानारायण के बीच हैं, वे तो हैं ही, इसके साथ ही महकबानों का मुसलमान होना उसके सामाजिक जटिलता को और भी घनीभूत कर देता है । इसीलिए कृपानारायण और उसके संबंधों को भी ।

अगले पृष्ठों में दिलो-दानिश उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का जो आलोचनात्मक अनुशीलन है, वह उपरोक्त ढांचे पर आधारित है । एक तरफ सम्पन्न और जाने-माने वकील कृपानारायण का अपनी पत्नी के साथ ठेठ घरेलू संबंध है, जो सौतिया-डाह से अपने जीवन का सुख-चैन सामान्यत: खो चुकी हैं और दूसरी तरफ रखैल महकबानो है, जो परिस्थितियों का शिकार होने के कारण हर प्रकार की उपेक्षा की प्रताड़ना की भुक्तभोगी है । यह महत्वपूर्ण है कि तमाम मनोवैज्ञानिक और सामाजिक तनावों और सन्त्रासों के बावजूद कृष्णा जी के चरित्र चाहे वे पुरुष हों या स्त्री प्रेम की लालसा, उससे उत्पन्न आनंद की भावना को अपने अन्दर जीवित बनाए रखते हैं । जीने की लालसा उनके अन्दर कमजोर नहीं होती है ।

(क) <u>महकबानो और कृपानारायण के बीच संबंध</u> (पति और पत्नी)

महकबानो और कृपानारायण के बीच के जटिल संबंधों की व्यापक पड़ताल के पहले उन सामाजिक दशाओं का विश्लेषण ठीक रहेगा, जिनके कारण महकबानो वकील साहब की रखैल बनी ।

बीसवीं शताब्दी का दूसरा दशक भारत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था । राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने हिन्दू और मुसलमानों

को अत्यन्त निकट ला दिया था । वस्तुत: यह समय हिन्दू मुस्लिम एकता का आदर्श समय था । इसका प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ा ।

महक बानो, नसीम बानो की पुत्री थी । नसीम बानो का परिवार व्यवसायिक दृष्टि से नाच-गाने से जुड़ा था । सामाजिक रूप से जिसे संगठित, स्थिर और मान्यता प्राप्त जीवन-शैली का जहां तक सम्बन्ध है, उनका महक बानो के जीवन में अभाव था ।

नसीम बानो और महक बानो के नाच-गाने वाली सामाजिक पृष्ठभूमि का पता उस प्रसंग में मिलता है, जिसमें वकील कृपानारायण महक बानो की गायन शैली की प्रशंसा करते हुए कहते हैं --

'जानम, अपनी तालीम को न बिसराइए । आप का घराना तो .... ।'[1]

इसका सम्पूर्ण खुलासा स्वयं झुंझलाई और तनावग्रस्त महक बानो पुत्र बदरुद्दीन को डांटते हुए करती है --

'हम लोग ! तुम लोग हो कौन ? किसी क़ातिल नचनिया के नवासे ।'[2]

नसीम बानो एक हिन्दू संगीतकार सूरजसेन की रखैल थी । महक उन्हीं की संतान थी । नसीम बानो परिस्थितियों के शिकार वश, हत्या की अपराधी हो जाती है । वह वकील कृपानारायण की सहायता से अपना मुकदमा लड़ती है । इस मुकदमे में होने वाला खर्च इतना बड़ा है कि उसे अपना घर, बाग-बगीचे, जेवर आदि बेचने पड़ते हैं । कुछ जेवर, जो बड़े ही कीमती हैं, वह वकीलसाहब के पास रखती है । जो विवादग्रस्त हैं । घर-संपत्ति से वंचित नसीम बानो वकील कृपानारायण की हवेली, जो आज की पुरानी नई दिल्ली की जामा मस्जिद के पास है, से कुछ ही दूरी पर स्थित फराशखाने में अपनी बेटी के साथ रहने लगती है । महक बानो के

युवा सौन्दर्य में बिंध कर वकील साहब उसे रखैल बना लेते हैं । वस्तुतः हर प्रकार से आधारविहीन और सामाजिक तिरस्कार की शिकार महक बानो को वकील साहब के संसर्ग में एक नया जीवन मिलता है ।

प्रारंभिक चरण में वकील साहब और महक बानो के बीच संपन्न प्रेम संबंध अत्यन्त रागात्मकता और परस्पर विश्वास और आस्था से युक्त होता है । ऐसा नहीं है कि वकील साहब के मन में कोई ग्रन्थि नहीं है; महक के साथ संबंधों को लेकर । वे महक के साथ अपने संबंधों को जैविक और सामाजिक, दोनों स्तरों पर औचित्यपूर्ण सिद्ध करते हैं --'क्या समझाएं जिस्म को राहत चाहिए होती है, पर दिलो-दिमाग भी कुछ मांगते हैं । सारा खेल खाने-पीने और घर चलाने का ही तो नहीं है - कुछ पाबंदियां अपने को सांचे में ढाल लेती हैं और कुछ बिना सांचे के चल मिलती हैं ।'[4]

जाहिर है कि वकील साहब समाज द्वारा बनाए गए 'प्रेम' के नियमों का अतिक्रमण करते हैं । यह सब उन के प्रभावशाली व्यक्तित्व और आर्थिक सम्पन्नता के कारण ही सम्भव हो पाता है । लम्बे-चौड़े परिवार की जिम्मेदारियों के भार से दबे वकील साहब को महक के साथ संतोष का अनुभव होता है । यही नहीं, महक बानो भी वकील साहब के साथ अपने संबंधों के कारण अपने को कृतार्थ समझती है । वह इस तथ्य से सन्तुष्ट है कि उसकी वकील साहब से मासूमा और बदरू नाम की दो सन्तानें हैं । वह खुल कर इस अवदान को स्वीकार करती है । 'दुनिया में दो ही नेमतें हैं, साहिब । बेटा और बेटी । आप ने हमें दोनों दिए ।'[5] वस्तुतः यहां पर महक बानो की मातृत्व ग्रंथि संतुष्टि प्राप्त करती है । इसीलिए वह एक हद तक स्वयं को कृतार्थ भी मानती है ।

यह महत्वपूर्ण है कि वकील साहब का महक बानो के साथ संबंध केवल रोमांटिक स्तर का ही नहीं है । वे बानो और उसके बच्चों की जरूरी आवश्यकताओं का ख्याल रखते हैं । दिसम्बर के महीने में पड़ने वाली कठिन सर्दी से बचाव के लिए वे बच्चों को रंग-बिरंगे और मोहक रजाइयों के फर्दे

भिजवाते हैं, जिसे देख कर बच्चे खुश होते हैं । समय समय पर विभिन्न प्रकार की मिठाइयां फराशखाने पर भेजना वकील साहब की आदत में शुमार है । लेकिन वह सब बहुत ही सीमित प्रकृति का होता है ।

दोनों के बीच में प्रेमालाप और छेड़छाड़ से भरी प्रेमवत बातें स्त्री-पुरुष के बीच के सहज संबंधों को अत्यन्त आकर्षण के साथ प्रस्तुत करती हैं । कृष्णा जी अपने चरित्रों के मन में प्रवेश करके उसकी भावनाओं को सहज ही पकड़ लेती हैं । 'अचानक गली में आवारा कुत्तों का भौंकना सुन कर कृपानारायण साहिब के माथे पर बल पड़ गए । कान चौकन्ने हुए - जानम, यह कैसा शोर है ?

- गली में नए राहगीर को कुत्ते पड़े लगते हैं । मेहमान होगा किसी का ।

वकील साहब ने कुछ अजीब हल्केपन और झुंझलाहट से कहा - हम जब भी आते हैं, हमारा इन कुत्तों से कभी वास्ता नहीं पड़ा ।'

अत्यन्त आत्मीयता भरे संबंधों के क्षणों में ही वकील साहब अनुभव करते हैं कि महक के साथ उनके जो संबंध हैं, उसके बारे में आस-पड़ोस के लोग क्या सोचते होंगे ? महक इस सामाजिक आलोचना से डरती नहीं है । अपने एकनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध पर उसे इतना विश्वास है कि वह खुल कर कहती है -'कोई अपने आप नतीजे पर पहुंचे तो पहुंचा करे ।'[6]

इस वार्तालाप की प्रक्रिया में हमें महक बानो के जीवन से संबंधित बहुत सी जानकारियां मिलती हैं । साथ ही वह कारण भी, जिस के कारण वकील साहब महक को अपनी रखैल बनाने में सफल हुए । प्रेम के गहरे क्षण वे क्षण होते हैं जिन में स्त्री-पुरुष अत्यन्त गोपनीय बातों को भी एक दूसरे को खुल कर बता देते हैं । महक कहती हैं, 'बताइए न कि आप हम तक पहुंचे तो कैसे पहुंचे । क्या आप ने हमारी सिफारिश की थी ।

'महज इतिफाक है तकदीर या कि तदबीर क्या कह सकते हैं । आपकी अम्मी का मुकदमा हमारे हाथों न होता तो हम आप तक कैसे पहुंचते । इतनी बड़ी दुनिया में आप को कहां ढूंढ़ते ।

- क्या अम्मी ने जेवरों की संदुकची के अलावा भी आपको कुछ सौंपा ?

हां । यह घर उन्हीं का है जानम ।'[7]

संयोग से जेवरों का मामला बगैर स्त्री-पुरुष के, महक और वकील साहब के सम्बन्धों को निर्णायक ढंग से प्रभावित करता है । वकील साहब वार्तालाप के दौरान ही बानो से वायदा करते हैं कि समय आने पर वे जेवर महक को मिल जाएंगे । मगर जब वकील साहब परिवार के दबाव में जेवर वापस करने से इन्कार कर देते हैं तो जेवर महक के लिए इज्जत के प्रश्न बन जाते हैं और वह इसी प्रश्न पर वकील साहब से संघर्ष करती है । ये जेवर महक की मां ने वकील साहब के पास रखा था ।

बहरहाल, वकील साहब और महक बानो के बीच सम्पन्न प्रेम का जो गत्यात्मक और सजीव चित्रण कृष्णा जी ने किया है, वह अत्यन्त आकर्षक है । क्योंकि उनके पात्र प्रेम की गहरी प्रक्रिया से गुजरते हुए ही अपने और समाज की गुत्थियों को प्रश्नगत करते हैं ।

प्रेम के गहरे आवेग में वकीलसाहब बानो को अपनी बाहों में भर लेते हैं ।

- बानो ने उन्हें अजीजी से रोक दिया । - इतना बारीक मत सूतिए कि हमारी जान पर बन आए ।'[8]

थोड़े से अन्तराल के बाद वकील साहब ने लाड़ से चूम कर कहा - बानों तुम्हें कुछ कहना है ।

बानों ने वकीलसाहब को ओठों से ढक लिया । चूम कर फुसफुसाई - बंदे की नहीं देवता की सवारी थी... ।[9]

इस प्रसंग में महक की उपरोक्त प्रेमपूर्ण अदा पर वकील साहब द्वारा की गयी टिप्पणी है -"यही बात हम से हमारी बीवी कहती तो ? नहीं, खानदानी औरतें इस मामले में मुंह नहीं खोलतीं । हां बानों कहती है तो अच्छा लगता है । कद ऊंचा हो जाता है ।"[10]

पुरुष की दोहरी नैतिकता का पर्दाफाश यहां होता है । पुरुष जिस स्त्री से खुल कर प्यार चाहता है, उसकी खुली और आजादख्याली बातों को अनैतिक और अमर्यादित करार देता है क्योंकि घर की चहार-दिवारी में पुरुष को मर्यादा के नाम पर अपनी धौंक जमाने का मौका मिल जाता है जो उसके अहम् को संतुष्टि प्रदान करता है ।

महक से दूसरी संतान के रूप में बदरू या बदरूद्दीन हुए । उनके जन्म के अवसर पर वकील साहब की मां बऊआजी ने अपना एक कीमती कंगन उपहारस्वरूप बानों को दिया था । लेकिन राजनारायण की साल गिरह वाली घटना से कंगन की वापसी का मामला कुटुम्बप्यारी के लिए अपनी खुद की इज्जत का प्रश्न बन जाता है ।

जब वकील साहब की हवेली में राजनारायण की गिरह मनायी जा रही थी, तो वहां परिवार के सभी बच्चे उपस्थित थे । लोग गीत गा-गा कर अपने उल्लास और खुशी का इजहार कर रहे थे । कुटुम्बप्यारी ने भी गीत गाना शुरू किया, तो बीच में गाने की कुछ पंक्तियां उससे छूट गयीं । इस बात पर बदरुद्दीन ने कुटुम्बप्यारी पर टिप्पणी कर दी । इससे गुस्सा होकर कुटुम्बप्यारी के पुत्र दम्मो ने बदरु को खींच कर तमाचा मारने का प्रयासकिया । साथ ही कहा -"चुप बे मुसलमानी के ।"[11] कुटुम्बप्यारी को यह बिलकुल अच्छा नहीं लगा कि उसकी सौत की संतानें उसकी स्वयं की हवेली में आएं और उसके बच्चों के साथ मेल-मिलाप करें । सालगिरह के समय से जो तनाव उपजता है, वह बढ़ता ही जाता है । कुटुम्बप्यारी कंगन को लेने की जिद करती है । इस संदर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि बऊआजी

की सहानुभूति महक के साथ है । वे दावे के साथ कहती हैं कि 'न कृपा कंगन हमारा था, जिसको चाहा हम ने दिया । बहू जी कह दो इसमें उनकी लपेट और समेट न चलेगी ।'[12] यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि पारिवारिक मर्यादा के रक्षक के रूप में कृपानारायण कंगन को महक से वापस ले लेने के पक्ष में ही हैं ।

यह प्रसंग इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके प्रकारान्तर का महक और वकील के बीच का नाजुक सम्बन्ध कंगन, मासूमा की शादी, स्वयं इसका मुस्लिम समुदाय का होना, जेवरों का मामला आदि मुद्दों पर तनाव ग्रस्त हो जाता है ।

कंगन को लेने के लिए, वकील साहब धर्मपत्नी कुटुम्बप्यारी और वकील साहब की विधवा बहन छुन्ना बीबी महक के घर पहुंचते हैं । यहां पर पहली बार कुटुम्बप्यारी और महकबानो का आमना-सामना होता है । महक बड़ी ही शालीनता और विनम्रता के साथ मेहमानों का स्वागत करती है । महक से कंगन वापस लेने का कुटुम्बप्यारी का अपना तर्क और दर्शन है । वस्तुत: वह कंगन वापस लेकर अपनी ईर्ष्या की अहम् भावना को तुष्ट करती है ।'वकील साहब मालिक हैं, जो मन में आए करें । रही इस कंगन की बात, तो खानदान का पुराना जेवर है, सो घर में रहना चाहिए ।'[13]

नि:सन्देह यह सब महक के व्यक्तित्व को आहत करने वाला है । चूंकि उसे यह कंगन उस समय दिया गया था जब वह मातृत्व को प्राप्त हुई थी । अत: उसे और भी कष्ट होता है । वकील साहब दिल से ही नहीं, दिमागी दांव-पेच का भी प्रयोग करते हैं । वह महक बानों को कुछ हद तक मूर्ख समझते हैं । वे चाहते हैं कि महक इसे एक पुराना किस्सा समझ कर भूल जाए । वस्तुत: वकील महक के बाहरी शारीरिक आकर्षण से ही प्रभावित होते हैं और उसे ही प्राप्त करने के लिए वे प्रयास और प्रेम करते

हैं । शरीर के ढांचे के अन्दर ही छिपी संवेदनशील और सम्मान और आत्मसम्मान की प्यासी महक बानो को पहचानने से वे साफ इनकार करते हैं ।

'किस्सा ? महक को अटपटा सा लगा । सोचा, जो आप बीबी के साथ मांगने चले आए, सो ठीक और जो हम ने कहा सो किस्सा । महकबानो जैसे अपने लिए हंसी हो ।'[14]

यह सब महक के लिए दु:ख और कष्ट की बात है कि लोगों के साथ वकील कृपानारायण भी पारिवारिक मर्यादा के नाम पर कंगन की वापसी के पक्ष में हैं ।

कंगन की घटना महक को ही नहीं, उसकी दोनों सन्तानों बदरू और मासूमा को भी अपने अपने तरीके से प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए मजबूर करती हैं । क्योंकि बतौर स्त्री के उसकी दोनों सन्तानें उसके अभिन्न अंग हैं ।

बदरू की प्रतिक्रिया विश्लेषण पर आधारित है । उनका मानना है कि उन के अब्बू अर्थात् वकील साहब ने कुटुम्बप्यारी या बऊआजी द्वारा डाले गए किसी दबाव में आकर ही कंगन को वापस लेने का विचार किया होगा जबकि मासूमा कुछ और सोचती है । उसका मानना है कि जब वकील साहब की हवेली इतनी सम्पन्न है तो कंगन मांगने क्यों चले आए । अब्बू में बदरू की जो आस्था है, उसका प्रतिवाद करती हुई वह कहती है -'बदरू अब्बू वैसे नहीं, जैसा आप उन्हें समझते हैं । कहां उनके अपने घर में गलीचे, झाड़ फानूस, काऊच, कुर्सी मेज और कहां यह हमारा उजाड़ घर । हवेली के मुकाबले यहां कुछ नहीं अम्मी । उनके नौकरों के घर इनसे बेहतर होंगे ।'[15]

मासूमा के इस कथन से कई बातें साफ होकर सामने आती हैं । वकील साहब ने कुछ एक अपवादों को छोड़ कर महकबानो और उसके बच्चों

को सम्पन्न बनाने का प्रयास नहीं किया । उनके लिए महक महज सुख भोगने की साधन थी । एक छोटा सा उपहार दिया था सो भी ले लिया । महक को लगता है भावात्मक संबंधों के बचे खुचे तार भी टूट गए । 'महक चीखते चीखते सहम गयी ।

दोनों बच्चों को देख कर लगा खुद उसके दो टुकड़े हो गए हैं ।'[16]

इस प्रकार महक बानो बतौर स्त्री के जो जीवन कृपानारायण के साथ जी रही है, वह सामाजिक ही नहीं, अपितु भावनात्मक दृष्टि से भी विशृंखलित है । उसमें से प्राप्त होने वाला सुख चिथड़े चिथड़े वाला है ।

वकील साहब की सबसे बड़ी मजबूरी यह है कि वे महक को सहज और सामान्य स्वीकृत देने और दिलाने में असफल होते हैं । वकील साहब के जीवन में ऐसा दौर भी आता है जब वे महक के चरित्र पर शक की निगाह से देखते हैं । फराशखाने पर वकील साहब महक को न पाकर परेशान हो उठते हैं । बदरू उन्हें बताते हैं कि किन्हीं सज्जन के साथ महक दिल्ली से बाहर गयी है । वकील साहब अपने ही ढंग से सोचते हैं जिसमें उनका महक के प्रति अविश्वास ही झलकता है -

'इश्किया छलावों की भी क्या कमी । महक सी औरत नजर में चढ़ जाए तो अगला आगे बढ़ कर क्यों न हाथ थाम लेगा ।'[17] वकील साहब का मन बेचैन सा हो उठता है । वे नाना प्रकार की बातें सोचने लगते हैं । वे सोचते हैं कि कहीं ऐसा तो नहीं कि महक कंगन के मामलों को लेकर बेवफाई पर उतर आई हो ।'क्या कंगन को लेकर महक हमसे खफा है । हमारी ओर से बेशक ज्यादती हुई है । लेकिन हम भी क्या कर सकते थे, मांग हमारी बीवी की ओर से थी... ।'[18]

यहां पर वकील साहब बीवी और रखैल में सीधा और दो-टूक फर्क करते हैं । वे चाहते थे कि महक ही नहीं, बल्कि उनकी पत्नी कुटुम्ब प्यारी भी कठपुतलियों के अनुसार ही उनकी इच्छाओं के अनुसार चलती रहें ।

'पूरी कोशिश रही कि कुटुम्ब और महक को लेकर किसी किस्म के झमेले न पैदा हों, मगर खेल को जिल्लत से कब तक बचाइएगा । यह सही है कि मीठे के खातिर जूठा खा लिया जाता है, मगर जूठे के लिए जूठन नहीं ।'[19] वस्तुत: महक बानो के व्यक्तित्व का पूर्ण इनकार इन पंक्तियों में है । वकील साहब के लिए महक महज एक मीठा जूठन है जिससे वे स्वयं को बचा न सके, अपनी भोगी मनोवृत्ति के कारण ।

कथाक्रम का जैसे-जैसे विकास होता है, वैसे-वैसे महक बानो के व्यक्तित्व में भी परिवर्तन होता है । बेटे, बेटी का भविष्य स्वयं की सुरक्षा आदि के प्रश्न उसकी आत्म मुग्धता को तोड़ते हैं । वह अपने अस्तित्व के प्रति अधिक जागरूक होती जाती है, 'हमारी तकदीर का तराजू अपने हाथ में पकड़े है ऐसे कि पलड़ा न इधर झुके और न उधर । बस बीच में ही टंगा रहे । एक ओर वकील साहब का कुनबा उस घर की औलाद और दूसरी तरफ हम और हमारे बच्चे ।'[20]

उधर वकील साहब भी ढलती उम्र में तथा घर गृहस्थी के भार में अपना पुराना राग-विराग खो बैठते हैं । पहले वे फराशखाने अक्सर आया जाया करते थे, किन्तु अब ऐसा नहीं । दो-दो तीन-तीन महीनों बाद और कभी-कभी तो साल भर में एक बार ही । अब महक के लिए वकील साहब के साथ बिताए गए दिनों की स्मृतियां ही शेष हैं । यद्यपि वकील साहब कभी कभार बीच बीच में आते हैं लेकिन दोनों के बीच वह गर्म जोशी और आवेग नहीं है जो पहले था । वस्तुत: दोनों के बीच में सम्बन्धों का आधार भी यही था । न कि कोई गंभीर सामाजिक दायित्व । 'महक बानो की आंखों में वकील साहब के जिस्म का खुमार फड़कने लगा । जानम । जानम । गुंधी आवाज बानो में मचलने लगी । कबूतरों का जोड़ा जैसे कपड़ों के अन्दर सरसराने लगा ।'[21]

चूंकि दोनों के सम्बन्धों का आधार शुद्ध रूप से दैहिक था जिसमें सामाजिक उत्तरदायित्व आदि के लिए कोई स्थान नहीं था । इसीलिए यह

सम्बन्ध महक बानो के लिए उलझन और परेशानी का कारण बनता है । 'साहिब इस नाते रिश्ते का कोई नाम तो न हुआ । दिल की ललक और लालसा ही तो । आपके लिए छत सिर पर पड़ी है । सो न सरकते बने न आगे बढ़ते । अम्मी न जाने कहां-कहां भागती फिरी और देने वालों ने आखिर तक तरह न दी । एक घड़ी खुशी भी नसीब न हुई ।'[22]

अपनी दु:खपूर्ण और सम्मान की प्यासी जिन्दगी को लेकर वह आगे कहती है -'हम तो अम्मी का साया बन बैठे हैं । कभी अकेले में लगता है अम्मी का सिर अपने धड़ पर रखा है । कभी कान में चुपके से हिदायत देने लगती हैं कि बानो बेटी अपने हक मत छोड़ना ।'[23]

वकील साहब बातचीत की प्रक्रिया में बच्चों के भविष्य का प्रसंग बानों के बीच में लाते हैं । वे मासूमा और बदरू के पिता हैं । उनका दायित्व है कि वे बच्चों के सुन्दर भविष्य के लिए स्वयं कुछ सार्थक कदम उठाएं । लेकिन वे उल्टे ही डरी हुई मुद्रा में बानों से प्रश्न करते हैं कि उन्हें बच्चों के लिए क्या करना चाहिए । इससे बानों की उलझन और बढ़ती है । वकीलसाहब चाहते हैं कि बानो रखैल और केवल रखैल बन कर रहे । लेकिन बानो कम से कम अपनी नहीं तो अपने बच्चों के लिए सहज सामाजिक स्वीकृति के लिए प्रयासरत रहती है ।'बच्चों की बाबत हमीं से क्यों कहलवाया चाह रहे हैं ? बदरू और मासूमा हमारे ही तो बच्चे नहीं आप भी तो उनके बाप हैं ।'[24]

इस प्रकार जैसे जैसे व्यक्तिगत संबंधों से उठ कर बानो अपने आस-पास फैलती जिन्दगी को देखती है तो उसके व्यक्तित्व में नई चेतना का प्रसार होने लगता है । वकील साहब बानो के बदलते दृष्टिकोण और आत्मविश्वास पर विश्वास ही नहीं कर पाते हैं ।' ... आखिर सीधी साधी महक यह सब कब से सोचने लगी । आजू-बाजू कौन है जो सिखा पढ़ा रहा है ।'[25]

बानो बच्चों और उनके बाप के बीच एक दूरी अनुभव करती है जो कि है भी । वह कम से कम बच्चों के मामले में इस दूरी को कम करना चाहती है । दु:खी चिंतित बानो उस मनहूस घड़ी के बारे में सोचती है जब वह अचानक वकील साहब का शिकार बन गयी । 'आहें भरते वह क्यामत का दिन आ पहुंचा और सब कुछ परिंदा बन कर उड़ गया । रह गए हम अम्मी के गुरु सूरजसेन की बेटी । अम्मी जेल में थीं । उनका मुकदमा लड़ने वाले थे वकील साहब । क्या खबर थी कि उन्हीं की तराजू पर हम तुलने को थे ।'[26]

बदरु स्कूल में थे तो दूसरे बच्चे उन्हें इसीलिए चिढ़ाते थे कि वे एक रखैल की सन्तान थे । कोई उन्हें हिन्दू कहता तो कोई मुसलमान । हिन्दू-मुसलमान होने के बीच में उनका अपना व्यक्तित्व ही धुंधला हो जाता है । इस बात से बानों का कलेजा छलनी सा हो जाता है । दरअसल स्त्री-पुरुष का दैहिक सम्बन्ध कोई भेद नहीं जानता है । वह इस स्तर पर अपने सम्बन्धों को सहज ही मान्यता प्रदान कर देता है । लेकिन उसके इतर के सामाजिक सम्बन्धों को मान्यता नहीं मिलती है । व्यक्तिगत और सामाजिक जिन्दगी के बीच में जो अन्तराल है, उसी का भावात्मक शोषण वकील साहब अपनी चातुरी और सामर्थ्य के बल पर करने में सफल होते हैं । बानो की समस्या यह है कि वह न तो पूरी तरह से वकील साहब को समझ पाती है और न ही स्वयं को ही ।

बहुत पहले उसकी मां ने जिन्दगी की उलझनों का मुकाबला करने के लिए सूत्र दिया था, 'गवैए के लिए एक राग की, एक तान की, एक सुरताल की फिदाई काफी नहीं । ऊपर वाले को देखो, उसके हजार जलवों में । हर मौसम में नया दौर, नया शोर, नया रंग । हजारों तो फल और हजारों की पात । सूरज हैं तो चांद भी । चांद है तो सितारे भी'[27] । लेकिन जिन्दगी का कड़वा यथार्थ इतना कठोर है कि उसके मां द्वारा बताई गयी विधियां अपना रंग खो देती हैं । जेवर का मामला और मासूमा की शादी का प्रश्न बानो को जिन्दगी के नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर देता है ।

शारीरिक ऊर्जा से विहीन होते वकील साहब प्रेम सम्बन्धों को कुछ दार्शनिक धरातल पर ले जाते हैं । सोचते थे कि इससे वे बानो को समझा ले जायेंगे । वे दलील देते हैं कि प्रेम की अभिव्यक्ति जरूरी नहीं है कि जिस्म के माध्यम से ही हो । लेकिन महक की काट के आगे उनके तर्क बौने से नजर आते हैं ।

'महक ने आंख न झपकी और बड़ी अंदाज की आवाज में कहा, 'दिलो दिमाग क्या काया के अन्दर नहीं होते ?'[28]

वकील साहब अपनी शारीरिक पराजय और मर्यादा के बोझ से मजबूर होकर जो बात कहते हैं, वह इस तथ्य का द्योतक है कि दैहिक सुख के समाप्त हो जाने पर महक के प्रति वे बड़ा ही उपेक्षापूर्ण तेवर अपनाते हैं । 'गौर से सुनिए । हम लोग एक दूसरे को ख्वाब समझते रहे । मगर अब गैर हो चुके हैं । कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए । मासूमा के लिए हवेली से जो कुछ भी किया जा रहा है, वह इसलिए कि हमारा फर्ज बना दिया गया है ।'[29]

मासूमा की शादी वकील साहब की विधवा बहन छुम्मा बीबी के ससुराल की रिश्तेदारी में तय की जाती है । चूंकि मासूमा वकील साहब की रखैल महक बानो की पुत्री है, इसीलिए ससुराल वाले यह शर्त रखते हैं कि मासूमा शादी के बाद अपनी मां से कभी नहीं मिलेगी । अगर वह कभी मायके आयी तो केवल वकील साहब की हवेली तक ।

इससे भी बड़ी बात यह है कि ससुराल वाले यह भी शर्त रखते हैं कि वकील साहब मासूमा को गोद ले लें और मासूमा की रखैली की बेटी की जो अपमानजनक छवि है, उसे धो डालें ।

'सुनिए । मुरादाबाद वालों ने मासूमा को हमसे ऐसे मांगा है कि जैसे वह हमारी कुटुम्ब की बेटी हो ।

क्या मतलब ?

जैसे वह शादी के बाहर की लड़की न हो । आप तो जानती हैं । खानदानों में इस बात का ख्याल रखा जाता है ।

गुस्ताखी माफ वकील साहिब । आप मासूमा के बाप हैं, उसे गोद क्यों लीजिएगा ?[30]

इस प्रकार धीरे धीरे सामाजिक मान-मर्यादा के नाम पर महक अपनी संतानों से अलग कर दी जाती है । हर प्रकार के अधिकार से वंचित महक के अन्दर धीरे धीरे कहीं न कहीं से विद्रोह की ज्वाला फूटने लगती है । बहाना होता है जेवर का मामला ।

कृष्णा जी के नारी चरित्रों की विशेषता है कि वे समानता के स्तर पर तो पुरुष के साथ सुख आनंद में बराबर सहयोग करती हैं, लेकिन अपमानजनक स्थितियों में डाल दिए जाने पर अधिकार और समानता के लिए संघर्ष भी करना शुरू कर देती हैं । महक भी यही करती है । इसीलिए महक का चरित्र अत्यन्त आकर्षक हो जाता है । अपनी निरीहता से ही नहीं, बल्कि विद्रोही जागरूकता से भी वह पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल होती है ।

जैसे कुटुम्बप्यारी ने कंगन को पाने के लिए जिद कर ली थी और कंगन को बानो से छीन कर उसका अपमान किया था । महक भी अपनी अम्मी जी के जेवरों को वकील साहब से प्राप्त करने के लिए जिद ठान लेती है ।

वकील साहब बानो को डराने की मुद्रा में कहते हैं कि अगर वह अपनी जिद पर अड़ी रहेगी तो मासूमा की शादी संकट में पड़ सकती है । बानो सब का प्रतिकार करती हुई साहस के साथ कहती है -"हमारी मां के जेवर आज शाम तक मिल जाने चाहिएं वकीलसाहब । आप अम्मी के वकील रहे , अब हम आप की मुवक्किल की बेटी हैं, जिस का उन पर पूरा हक है ।"[31]

महक का बेटा बदरू मां को उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए अपनी मां को समझाने की कोशिश करता है । महक अपने बेटे को समझाती हुए कहती है -'बदरुद्दीन, तुम नहीं समझोगे । हक मांगना अगर लड़ाई है तो दूसरों का हक मारना भी बेईन्साफी है ।'[32]

जेवर प्राप्त करने के लिए महक खां साहब की सहायता लेती है । उनके यहां पहुंचती है । जाहिर है कि वकील साहब भी वहां पहुंचते हैं । वहां पर महक बानो को खड़ा देखकर कृपानारायण थरथरा गया । वह वह औरत तो नहीं जिसे कुछ देर पहले हम उस घर में छोड़ आए थे ।'[33]

बहुत कुछ सीमा तक बानो अपने उद्देश्य में सफल होती है । वकील साहब जेवर को हवेली से ला कर निर्णय होने तक खां साहब के घर में रख देते हैं । कृष्णाजी की महक की प्रतिक्रिया पर टिप्पणी है, 'अंदर महक बानो मुस्करा दी । आज से पहले तो हम औरत भी नहीं थे । ओढ़नी थे, अंगिया थे, सलवार थे... जूती अपनी थी और पांव किसी को सौंप रखे थे ।'[34]

महकबानो के बदले हुए तेवर को देख कर यह कहना मुश्किल है कि यह वही बानो है जो केवल वकील साहब के प्रेम की दीवानी थी । लेकिन समय के साथ वकील साहब ही नहीं बदले, बल्कि महक भी बदली । वस्तु से व्यक्ति बनती महक का चरित्र नि:सन्देह आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वर्णित अनेक महत्वपूर्ण चरित्रों में अपना अलग पहचान बनाता है । कृष्णा जी के चरित्र घर-गृहस्थी के ढांचे में रह कर उसे अपनी अस्मिता और सम्मान के मुताबिक पुनर्गठित करने की कोशिश करते हैं ।

कुल मिलाकर वकील कृपानारायण महकबानो के प्रति पूरी तरह ईमानदारी की कसौटी पर खरे नहीं उतरते । जीवन की अन्तिम घड़ियों में महक उनके पास थी । मरने के पहले उन्होंने अपनी वसीयत लिखी जो उपन्यास में 'लाल बही के पन्ने से' नाम से अन्त में संकलित है । वकील

साहब पहले ही मासूमा की शादी कर चुके थे । सो मामला बानो और बदरू का था । नंबर 7, जमुना रोड, को उन्होंने बदरू के नाम से कर दिया । इसे उन्होंने अपनी पूंजी से नहीं, बल्कि महकबानों की पूंजी से खरीदा था । अतः उन्होंने बदरू के साथ कोई बहुत बड़ा न्याय नहीं किया । यह अत्यन्त मार्मिक बात है कि महक को उन्होंने अपने वसीयत नामे में कुछ नहीं दिया । उनके लिए महक अन्तिम क्षण तक रखैल ही बनी रही । शायद महक जिस इच्छा और लालसा के साथ वकील साहब के साथ सम्बन्धों से जुड़ी थी, वह कभी पूरी नहीं हो सकी । महक सहज सामाजिक स्वीकृति के लिए वकील साहब से संघर्ष करती रही । उसकी बेटी की शादी हो जाती है । वह एक सम्मानजनक जीवन को प्राप्त करने में सफल होती है । बदरू को वकीलसाहब अपनी वसीयत में संपत्ति देने की सिफारिश करते हैं । ये सब महक के लिए संतोष की चीज बन कर आते हैं । लेकिन महक के हिस्से में आते हैं केवल दुःख और असम्मान । जिनको सहज ही अपना लेने से अस्वीकार कर देती हैं । वकील कृपानारायण उसे भोग का उपकरण मात्र समझ लेते हैं किन्तु महक अपने सीमित विद्रोह से ही अपनी जागरूकता का परिचय दे देती हैं । उपन्यास में इस प्रसंग को अत्यन्त कौशल से चित्रित किया गया है ।

(ख) वकील कृपानारायण और पत्नी कुटुम्बप्यारी के बीच संबंध (पति-पत्नी)

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में पत्नी के लिए यह अति आवश्यक है कि हर परिस्थिति में पति के प्रति स्वामिभक्ति बनी रहे । हिन्दू वैवाहिक व्यवस्था में विवाह को ऐसा सम्बन्ध बनाया जाता है, जिसको बनाये रखना स्त्री (पत्नी) का सामाजिक ही नहीं, बल्कि धार्मिक कर्तव्य हो जाता है ।

उपन्यास दिलो दानिश में एक भरा-पूरा परिवार है जिसके मुखिया वकील कृपानारायण हैं । वैसे तो उपन्यास में कई चरित्र हैं लेकिन मुख्यत:

वकील कृपानारायण उनकी पत्नी कुटुम्बप्यारी और रखैल महक बानो ही प्रभावी चरित्र के रूप में पाठकों को आकर्षित करते हैं ।

कुटुम्बप्यारी 'टिपिकल' भारतीय नारी (पत्नी) चरित्र है । वह अपने पति वकील कृपानारायण के प्रति पूर्ण रूप से आस्थावान है । यद्यपि उसे मालूम है कि उसकी एक सौत महकबानो के रूप में वकीलसाहब की रखैल है । शुरू-शुरू में कुटुम्बप्यारी स्वयं को नयी परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित करने का पूरा प्रयास करती है । लेकिन जब उसे पता चलता है कि वकील साहब से महक बानो की दो सन्तानें - मासूमा और बदरू हैं - तो वह विफर पड़ती है । उसके प्रतिवाद के शब्द आत्म जागरित नारी के शब्द बन जाते हैं जो कभी भी विस्फोटक स्थिति का स्वरूप धारण नहीं करते हैं ।

दरअसल पति-पत्नी और रखैल का जो तनावपूर्ण त्रिकोणात्मक सम्बन्ध बनता है, उस सम्बन्ध के प्रति गहरे रूप से प्रतिक्रिया करती कुटुम्ब प्यारी का चरित्र पाठकों के सामने खुलता है । एक स्त्री के प्रेम, सौंदर्य-शृंगार के लिए सौत चुनौती बन कर आती है और तब शुरू होता है ईर्ष्या और तनाव का सिलसिला । दिलो-दानिश में वकील साहब कुटुम्बप्यारी और महक दोनों को सही रूप से समझ पाने में असफल होते हैं । दोनों ही नारियों के प्रति उनका दृष्टिकोण सामंतवादी है ।

सामंती रसिक मनोवृत्ति के अनुसार ही वकील साहब चाहते हैं कि कुटुम्बप्यारी हमेशा सजी-संवरी रहे और उनकी 'सैक्स ग्रन्थि' को संतुष्ट करती रहे । वे कहते हैं, 'क्यों खैरियत तो है ? इस जाड़े में कोई ढंग का कपड़ा पहना होता । आपकी साड़ी देख कर तो दहलीज पर बुढ़ापा खड़ा नजर आता है ।'[35] दरअसल, वकील साहब यह भूल जाते हैं कि एक पत्नी के लिए सौन्दर्य-शृंगार का मुख्य आधार उसके पति का पत्नी के प्रति पूर्ण और अविभाजित प्यार होता है । वही कई स्तरों पर प्रेरणा का कार्य करता है । कुटुम्बप्यारी वकील और महकबानो के बीच अपने आपको

पूरी तरह से उपेक्षित पाती है । उसे बार-बार लगता है कि उसके स्थान को किसी और स्त्री ने छीन लिया है ।

ऐसा नहीं है कि वकील कृपानारायण अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करते । उनकी संतानें हैं - पम्मो, दम्मो और रज्जो ।सबसे बड़ी संतान है रज्जो या राजनारायण जिन्हें वकील साहब सबसे अधिक चाहते हैं और अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हैं ।

राजनारायण की सालगिरह का अवसर कुटुम्बप्यारी के तनावग्रस्त व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं को सामने लाता है । सालगिरह के अवसर पर महकबानो की दोनों सन्तानें मासूमा और बदरू भी शामिल होते हैं । वे अपने बड़े भाई राजनारायण के लिए उपहार भी लाते हैं । सालगिरह के अवसर पर संगीत, गीत का कार्यक्रम होता है । स्वयं कुटुम्बप्यारी गीत गाती है जिस पर बदरू हल्की सी टिप्पणी कर देते हैं जो कुटुम्ब की संतान दम्मो को अच्छा नहीं लगता है । वह बदरू को थप्पड़ मार देता है और बदरू पर लगने वाली टिप्पणी करता है -'चुप बे मुसलमानी के'।[36] इससे कुटुम्बप्यारी के ईर्ष्याशील व्यक्तित्व को थोड़ी राहत मिलती है । कुटुम्बप्यारी अपने सौत के बच्चों को देख कर अन्दर ही अन्दर जल-भुन जाती है । अपने बच्चों के साथ बदरू और मासूमा को घुला-मिला देख कर उसे अत्यन्त कष्ट होता है । 'रज्जो, मासूमा और बदरू को बतियाते देखा तो जाने क्यों पांव में कमजोरी सी महसूस की । चेहरे पर अजीब खौफ़ और खाफ़गी उभरे और अन्दर कोई गुमनाम सी आंधी चलने लगी ।'[37]

सालगिरह के अवसर पर कुटुम्ब अपने गीत में अपनी ईर्ष्याजन्य वेदना को अभिव्यक्त करती है -

> 'कौन-सा ऐसा सितम है जो न हम पर हो गया ।
> जो न होना था वह सब कुछ आज हम पर हो गया ।'[38]

वस्तुत: व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसकी मानसिक और शारीरिक दशाओं को परिस्थितियां अपने दबाव से परिवर्तित कर देती हैं । एक सीधी-साधी पूरी तरह श्रद्धालु और आस्थावान पत्नी के रूप में कुटुम्बप्यारी के अशान्त और वेदनामय जीवन के लिए वकील साहब की सामंती आदतें ही उत्तरदायी हैं ।

मासूमा के बच्चे पहली बार हवेली पर आए थे । सालगिरह के अवसर पर बच्चों का पार्टी में शामिल होना कुटुम्ब अपने लिए अपमान समझती थी । वह चाहती थी कि महक के बच्चे फराशखाने में ही रहें । लेकिन वकील साहब के विचार कुछ और ही थे, बाप जो ठहरे । वे सोचते थे कि बच्चे आपस में घुलें-मिलेंगे तो अजनबीपन खत्म होगा, आत्मीयता बढ़ेगी । वकील साहब की दलील कुटुम्ब के गले नहीं उतरती । वह आग बबूला हो जाती है तो वकील साहब कहते हैं -"सुनिए बीबी होने के नाते आपको यह एहसास तक नहीं है कि अच्छी गुफ्तगू और ढंग का तुफ्त उठाने का हक भी शौहर का बनता है । मगर आप के पास वही पुराना दुखड़ा है ।"[39]

पहले से ही परेशानकुटुम्बप्यारी वकील साहब की डांट से दु:खी हो रोने लगती है । "और धमकाइए और डांटिए हम तो आप की गुलामी में हैं न । स्याह-सफेद जो भी करो, हमें आपकी बंदगी करनी ही होगी ।"[40] दु:खी कुटुम्बप्यारी वकील साहब को पुराने मधुर सम्बन्धों की याद दिलाती है । वह कहती है कि जब राजनारायण उसकी गोद में थे तो वे उससे एक पल भी दूर नहीं रहते थे । लेकिन वकील साहब दलील देते हैं कि समय के बदलने के साथ इन्सान भी बदल जाता है । वस्तुत: वकील साहब कुटुम्ब के दु:ख को जानकर भी अनजान बने रहते हैं । अब उसकी वेदना को समझते नहीं । कुटुम्ब चाहती है कि जो समय और प्रेम वकील साहब महक को दे रहे थे, वह सब उसका था ।

वकील कृपानारायण अपनी दलीलों से कुटुम्ब पर विजय पाने की कोशिश करते हैं । वे केवल वकालत की ही दांव-पेंच नहीं, बल्कि कैसे एक

स्त्री को हमेशा नियंत्रण में रखा जाए, इसमें भी महारत हासिल कर चुके थे । स्त्री के अहम् को समझना और उसे सहलाना उन्हें खूब आता है । 'वक्त कहीं भी गुजारें, हम हमीं रहेंगे । आप के लिए कोई दूसरा न बन जाएंगे ।'[41]

यही नहीं, वकील साहब अपने मन के छलिया रूप का खुलासा भी कर देते हैं जिसमें कुटुम्ब के प्रति उनकी कठोरता और असहिष्णुता ही परिलक्षित होती है । वे निर्मम होकर कहते हैं, 'सुनिए, हर मर्द के हाथ में एक जाल हुआ करता है । अपनी हिम्मत और मर्दानगी से वह इस जहान में जितना समेट सके समेट ले ।'

वस्तुत: कृपानारायण उपरोक्त कथन के माध्यम से महक के साथ सम्बन्धों को जायज ठहराने की कोशिश करते हैं । महक के प्रति वकील साहब की आकर्षणजन्य घनिष्ठता से कुटुम्बप्यारी जल उठती है -'हां - हां, आप के हिसाब से तो उन की सालगिरह भी यहीं मनानी चाहिए । फिर सगाई, लग्न, शादी, बरात और जज्जगी ।'[42]

कुटुम्ब को बार बार लगता है कि उसे एक औरत उसकी जगह से हटा रही है । एक पत्नी का स्थान कोई और ले रही है । इसीलिए वह महक बानो को सहन नहीं कर पाती है । विशेष कर जब वह वकील साहब के बच्चों की मां बन चुकी है । ऐसी ही ईर्ष्या की मुद्रा में उसकी घृणा महक और उसके बच्चों के प्रति फूट पड़ती है, 'हम आपकी जगह होते तो सैर-सपाटे के बहाने दोनों बच्चों को भूली भटियारिन के तालाब में गुम करवा देते ।'[43]

इस प्रकार बच्चों का मामला पति-पत्नी के बीच के तनाव और उस के फलस्वरूप बढ़ती दूरी का कारण बनता है । वकील साहब को उस समय बहुत ही दु:ख हुआ था जब दम्मो ने बदरू को 'मुसलमानी का बच्चा' कह कर अपमानित किया था । वे चाहते थे कि बच्चे आपस में सहज ढंग से

घुल-मिल कर रहें । उनके लिए मातृत्व का सत्य ही सब से बड़ा सत्य बन जाता है । हिन्दुआनी और मुसलमानी तो सब बेकार की बातें हो जाती हैं । उन्हें बस एक ही चीज वास्तविक लगती है और वह यह कि दोनों ही उनके बच्चों की मां हैं ।

निःसन्देह उपन्यास से यह स्पष्ट होता है कि वकील कृपानारायण अपनी पत्नी के हक को पहचानते हैं । लेकिन उसे स्वीकार करने के पक्ष में वे नहीं हैं । वे चाहते हैं कि महक और कुटुम्ब दोनों आपस में प्रेम-भाव से रहें । आपस में कोई तनाव न हो । दोनों उन्हें गहराई से प्रेम करें । इसी प्रक्रिया में वे महक के साथ अपने सम्बन्धों का खुलासा अपनी पत्नी कुटुम्ब के सामने करते हैं ।" ... आखिर मुहब्बत को मुहब्बत ही क्यों न कहा जाए । एक सीधा साधा इंसानी जज्बा । यह भी क्यों जरूरी है कि एक ही रिश्ता पसर कर बंदे की पूरी जमीन और जमीर को घेर ले । सच तो यह है कि घर-घर की बीवियां हाल-बेहाल होती रहेंगी, शोर मचाती रहेंगी, महबूबाएं हुस्न के जोर से दिलों पर रंग जमाती रहेंगी । खुदा जो जोड़े बना देता है, वह ब्याहे हों या अनब्याहे, एक दूसरे का रास्ता काटेंगे जरूर ।"[44]

वकील साहब का उपरोक्त कथन यह इंगित करता है कि कुटुम्ब प्यारी जिस पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था में मर्यादा के नाम पर परिवार में बनी रहती है, वह समाज अपनी संरचना में सामंतवादी है । वकील साहब अपने गैर-नैतिक संबंध को मुहब्बत के नाम पर और कभी-कभी तो ईश्वर की नियति के नाम पर उचित ठहराने की कोशिश भी करते हैं । लेकिन क्या कुटुम्ब के अन्दर प्यास नहीं है ? अगर वह भी यही तर्क देती कि वह भी किसी एक बंदे की गुलाम नहीं तो पारिवारिक मर्यादा का किला कितनी देर तक सुरक्षित रह सकता था । कृष्णा जी की शैली की विशेषता यही है कि पुरुषों के खिलाफ बिना कोई बड़ा तीखा विरोध भाव व्यक्त कराए अपने नारी पात्रों के असंतोष के माध्यम से सामाजिक

ढाँचे की न्यूनता उसकी अपर्याप्तता को स्पष्ट कर देती है । वकील साहब परेशान रहते हैं कि उन की पत्नी उन की बात को क्यों नहीं समझती कि 'फर्क चाहने में नहीं चाहत में है । उसके रंग में । यह हकीकत हमारी बीवी को समझ में नहीं आती है । हजार झाड़-फानूस लगा लीजिए घर तो घर ही रहेगा ।'[45]

कुटुम्बप्यारी की परेशानी उस समय और बढ़ जाती है, जब उसकी ननद छुन्ना बीबी, जो कि विधवा है, आकर स्थायी रूप से हवेली में रहने लगती है । वकील साहब अपनी बहन को अलग मकान व सारी सुविधाएं देते हैं, जिसे कुटुम्बप्यारी बर्दाश्त नहीं कर पाती है । उसे मलाल है कि परिवार की मर्यादा का बोझ उसके ऊपर डाल कर और प्रेम लीला किसी और के साथ करके उसके साथ अन्याय किया जा रहा है । वकील साहब की दलीलों की उसके पास कोई काट नहीं है । वह केवल अपनी मजबूरी को व्यक्त कर सकती है । लेकिन कुटुम्बप्यारी की मजबूरी भरी अभिव्यक्ति में कहीं न कहीं एक आत्म जागरित स्त्री की ध्वनि सुनाई पड़ जाती है -'जिस दिन से व्याह कर आए, हम ने खान-दान की खिदमत की, इसकी इज्जत सिर पर उठाई, पर आपने हमें दु:खियारी करके ही दम लिया, बिरादरी भर में बदनाम कर दिया ।'[46] कुटुम्ब की परेशानी केवल यही नहीं है कि व्यक्तिगत स्तर पर वह दु:खी है, वह इसलिए भी परेशान है कि वकील साहब ने प्रचार करके लोगों में यह बात फैला दी कि कुटुम्ब तो मनहूस औरत है । वह हमेशा दु:खी ही रहती है और केवल दूसरों को दु:खी ही देखना पसन्द करती है ।

पति-पत्नी के बीच में तनाव और अविश्वास बढ़ता ही जाता है । वकील साहब को लगता है कि जो कुछ भी कुटुम्बप्यारी भोग रही है, उसके लिए वे जिम्मेदार नहीं हैं । यह तो हमेशा से हर स्त्री को भोगना पड़ा है । 'जो दुनिया जहान की बेटियों को पेश आती है, वही तो आएंगी । बताइए इसमें हम क्या कर सकते हैं ।'[47] वकील साहब का इतना कहना था

कि कुटुम्ब का तन बदन फुंकने लगा । उठकर कुर्सी के पास जा खड़ी हुई । कई देर तक उन्हें हिकारत भरी निगाह से देखती रही । उसके ऊपर अचानक पागलपन सवार हो जाता है -'हमारा गला घोंट दीजिए । आप ऊंचे वकील हैं । साफ बच निकलिएगा ।'[48]

कुटुम्ब अपने ऊपर पूरी तरह नियंत्रण खो बैठती है । वह इतनी ज्यादा अवसादग्रस्त हो जाती है कि फांसी लगा कर आत्महत्या तक करने का प्रयास करती है, जिसका वर्णन खुद वकील साहब महक बानों के साथ बातचीत के दौरान करते हैं । कुटुम्ब महक को बाजारू औरत समझती है । और उसके दो बच्चे उसके जीवन के हर क्षण को बेधते रहते हैं ।

वकील साहब जो कुछ भी हों, लेकिन खानदान की इज्जत के नाम पर हमेशा जागरूक से रहते हैं । लेकिन वे उस समय हक्के बक्के रह जाते हैं, जब कुटुम्ब उन्हें याद दिलाती है कि खानदान की इज्जत को खतरा उनके रसिक मिजाज के कारण है । वे महक के साथ अपने सम्बन्धों को ऐसी होनी मानते हैं, जिसे कोई टाल नहीं सकता था । वह तो होना ही था, 'होनी बड़ी बलवान है, बेबस है आदमी उसके सामने ।'[49]

लेकिन कृष्णा जी ने वकील साहब के वक्तव्यों के पीछे छिपे उन के सामंती मनसूबों को वकील साहब की ही मां बऊआजी से पर्दाफाश कराया है । दुःखी कुटुम्ब को देख कर बऊआजी अपने बेटे को बेटे की छवि से अलग कर उसे एक 'टिपिकल' पुरुष की भांति देखती हैं जो औरतों पर अपनी अधिसत्ता को बनाए रखने के लिए तरह-तरह के हथकण्डों का इस्तेमाल करता है । बऊआजी कहती हैं -'हमसे पूछो मर्द को गुमराह करने वाले फकत हुस्न और जवानी नहीं, उसकी कमाई है जो इसे खुद मुख्तारी देती है । सोचो, घर में बैठी-बैठी औरत क्या करेगी ।'[50]

इस प्रकार संपत्ति पर स्वामित्व का जो अधिकार पुरुष को परंपरा से प्राप्त होता है, वही उसकी मनमानी और प्रताड़नाकारी हरकतों का कारण बनता है। संपत्ति से वंचित औरत हर तरह से पुरुष पर अवलम्बित हो जाती है। ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का यह अद्भुत और निर्मम सत्य है। अपनी मां द्वारा कही गयी पुरुष-लीला की बात को आगे बढ़ाते हुए बऊआ जी कहती हैं - 'देख पुच्ची, जो हमने देखा है, सहा है, कमोबेश वही तुम भी देखोगी, सहोगी। मरदों के हिस्से में आए हैं महफिल मुजरे, खेल तमाशे और औरत को लगे हैं बाल-बच्चे, दिन-त्यौहार, पूजा-व्रत। रोने-धोने से भला कुछ बदलने वाला है।'[51]

बऊआजी आर्थिक ही नहीं, उन सांस्कृतिक कारणों की भी व्याख्या करती हैं, जो स्त्री को परावलम्बित बनाती हैं। 'हमसे पूछो तो घर की बहू जिंदगी भर या मर्द की सुनेगी या बेटों की। धर्मशास्त्र भी तो यही कहते हैं।'[52]

वकील साहब ठेठ पितृसत्तात्मक मूल्यों के वाहक हैं। वे सम्पन्न हैं, व्यवसायी हैं। लेकिन उनकी विचार दृष्टि धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोणों से परिचालित और अनुमोदित है। इस प्रकार पति-पत्नी के धरातल पर स्त्री पुरुष सम्बन्धों को एक सर्वथा नया आयाम खुलता है। यह सब निःसन्देह कृष्णा जी की प्रगतिवादी सोच और सूक्ष्म पकड़ का कमाल है। वे नारे-बाजी से कोसों दूर रहती हैं, लेकिन इसके बावजूद अपनी बात को, जो हर तरह से प्रगतिशील है, बड़ी शिद्दत के साथ रखती हैं। रचनात्मक कला की पूर्ण ऊर्जा और सुरक्षा के साथ।

कृपानारायण और महकबानो के बीच तनाव का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण कंगन बनता है। कंगन को बऊआजी ने बदरू के पैदा होने की खुशी में महकबानो को दिया था। लेकिन सालगिरह पर कुटुम्ब इसे अपनी

इज्जत का सवाल बना लेती है । वह हर हालत में कंगन को प्राप्त कर लेना चाहती है । वह अपने पुत्र राजनारायण की कसम भी खाती है । वकील साहब को मजबूर कर देती है कि वे कंगन को वापस लाएं । चूंकि वकील साहब खानदान की मर्यादा के नाम पर समय आने पर कुटुम्ब प्यारी की तरफ झुकते हैं । इसका कारण यह है कि खानदान की मर्यादा की परंपरा की रक्षा कुटुम्ब (पत्नी) की संतति के माध्यम से ही हो सकती है । वह कुटुम्ब को इसलिए नहीं तरजीह देते हैं कि वे उसे बहुत प्रेम करते हैं । औरतों के बारे में उनकी सोच ठेठ रूप से सामंतवादी है -'बाप-दादा की जायदाद पर क्योंकि बेटियों का हक अख्तियार नहीं होता, उन्हें दिन-त्योहार, शादी व्याह में पुरतक्कलुफ पुरजोशी से पीहर में बुलाना लाज़िमी है । खान-दान की बहनें-बेटियां और फूफियां अपने-अपने घरों में आबाद रहें और पीहर की छोटी-बड़ी बरकतों से शाद रहें - हर बाप और भाई की तरह हम भी उन के लिए यही दुआ करते हैं ।'[53]

इस प्रकार पति-पत्नी के रूप में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का जो स्वरूप कृपानारायण और कुटुम्बप्यारी के बीच बनता है, वह घर-गृहस्थी की सीमाओं से बंधा है । उसमें मर्यादा, खानदान की परंपरा आदि तत्व - सक्रिय रूप से मौजूद रहते हैं । कुटुम्बप्यारी की हर कोशिश यही रहती है कि परिवार में सामंजस्य बना रहे । वह स्वयं को इसी दिशा में सक्रिय करती है । यद्यपि महकबानो और वकील साहब के सम्बन्धों के कारण दुःखी होती है, वह वकील साहब के परिवार के विरुद्ध न तो खुला विद्रोह करती है, और न ही उसको छोड़ती ही है । वकील साहब का परिवार उन की मृत्यु के बाद सुरक्षित रहता है ।

इस प्रकार 'दिलो-दानिश' में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का स्वरूप परिवार की महिमा के ढांचे में सम्पन्न होता है । यह परिवार और इसकी नारियां न तो जड़वादी हैं और न ही विद्रोही प्रकृति की । वे अपने मान-सम्मान के लिए घर-गृहस्थी के दायरे में रह कर जगह बनाने की कोशिश करती हैं ।

संदर्भ

1. कृष्णा सोबती - दिलो दानिश, पृ० 17
2. वही, पृ० 173
3. वही, पृ० 12
4. वही, पृ० 13
5. वही, पृ० 13
6. वही, पृ० 14
7. वही, पृ० 75
8. वही, पृ० 16
9. वही, पृ० 16
10. वही, पृ० 67
11. वही, पृ० 54
12. वही, पृ० 54
13. वही, पृ० 64
14. वही, पृ० 64
15. वही, पृ० 66
16. वही, पृ० 67
17. वही, पृ० 106
18. वही, पृ० 107
19. वही, पृ० 107
20. वही, पृ० 111
21. वही, पृ० 126
22. वही, पृ० 128
23. वही, पृ० 138
24. वही, पृ० 131
25. वही, पृ० 152

26. वही, पृ0 139

27. वही, पृ0 139

28. वही, पृ0 156

29. वही, पृ0 157

30. वही, पृ0 158

31. वही, पृ0 171

32. वही, पृ0 113

33. वही, पृ0 174

34. वही, पृ0 175

35. वही, पृ0 11

36. वही, पृ0 26

37. वही, पृ0 21

38. वही, पृ0 24

39. वही, पृ0 35

40. वही, पृ0 35

41. वही, पृ0 36

42. वही, पृ0 36

43. वही, पृ0 37

44. वही, पृ0 39

45. वही, पृ0 42

46. वही, पृ0 46

47. वही, पृ0 47

48. वही, पृ0 47

49. वही, पृ0 48

50. वही, पृ0 85

51. वही, पृ0 83

52. वही, पृ0 82-83

53. वही, पृ0 196

अध्याय - 4

`दिलो-दानिश` का भाषा शिल्प

'दिलो-दानिश' का भाषा-शिल्प

समकालीन रचनाकारों में कृष्णा सोबती एकमात्र ऐसी रचनाकार हैं जो 'भाषा' के मामले में बेहद जागरूक और प्रतिबद्ध लगती हैं। एक-एक शब्द को खोजना, चुनना, उन्हें तराशे हुए हीरे की तरह इस तरह से संयोजित करना, जिससे पात्र, उनका सम्पूर्ण आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व ही नहीं, बल्कि आसपास का वातावरण मूर्तिमान हो सके, कृष्णा जी की शब्द-शैली की अपनी विशेषता है। उनकी भाषा उस बीते जीवन के यथार्थ को प्रकट कर देने का उपकरण मात्र नहीं बल्कि आपा खोने वाली यह वाणी ही यथार्थ है जिसमें कुटुम्बप्यारी कृपानारायण और महक की जीवन चर्चा स्पंदित होती है। बीसवीं शताब्दी का दूसरा दशक और उसके आसपास धड़कती दिल्ली का जीवित साक्षात्कार यदि दिलो-दानिश में संभव हो सका है, तो इसका श्रेय कृष्णा जी की भाषा-विवेक को ही जाता है।

उपन्यास का आरंभ ही आकर्षक और भावों को उदीप्ति कर देने वाली भाषा से होता है। 'इस बार जो चिल्ला पड़ा तो शहर भर को कंपकंपी लगगयी। गहराता जाड़ा लाल किले की महराबों को फलांग जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर पसर गया। रजाइयों, पुलाइयों और निहालियों का ढेर। हवा में झिलमिलाती पतली धूप। रंग-बिरंगी रजाइयों में पड़ते डोरे मानो दिल्ली के बाशिंदों पर आड़ी-तिरछी खींचने लगे।'[1]

वकील साहब की वकालत के कार्यों में सहयोग करने वाले मुंशी जी रजाई के फर्दों की झिल्ली महक के घर बच्चों को देने ले जाते हैं। बच्चों की उत्सुकता और उन के मासूम भाव-बोध को कृष्णा जी ने जैसे अपनी कलम से उकेरे गये शब्दों से जीवंत कर दिया है -

'हम बताएं, मुंशी जी बड़शाह बूले की नानखताई लाए होंगे ।

बदरू बहन के सीधेपन पर हँसे - फल्ली और नानखताई । क्या मुंशी जी हम से खोमचा लगवाएंगे ?

बदरू मुंशी जी की खुशामद करने लगे - अब देर न कीजिए, मुंशी जी । दिखा डालिए । कहीं जामा मस्जिद से हमारे लिए तीतर-बटेर तो नहीं ले आए ?

मासूमा बोली - मैना होगी । बुलबुल होगी ।'[2]

बच्चों के मनोभावों की निश्छलता का उनकी चंचलता और निर्दोष ज्ञानबोध का सजीव चित्रण सालगिरह वाले दूसरे अध्याय में हुआ है । बदरू और मासूमा राजनारायण की सालगिरह के अवसर पर 'कलम' उपहार-स्वरूप भेंट करते हैं । उसी प्रसंग में

'बच्चों ने एक साथ शोर किया - खोलिए । रज्जो भाई खोल कर दिखाइए ।

रज्जो भाई का हाथ ज्यों ही खोलने को गोटे के फूल पर गया, बदरू ने अचक कर हाथ रोक दिया - नहीं रज्जो भाई, अभी नहीं । जब सब के खुलेंगे, तभी इन्हें खोलिए ।

रज्जो भाई ने खुशी का इजहार किया - अच्छा कुछ अता-पता तो दीजिए है क्या ।

- हब्शी हल्वा ?

- नहीं ।

- सोहण हल्वा ?

- नहीं ।

- पतंग-मांझा ?

- नहीं ।

- किताब ?

- नहीं ।

- कलम ?

और बदरु के तेवर - बदरु रज्जो भाई से झूठ-मूठ का गुस्सा करने लगे - आपको जरूर अब्बू ने बताया होगा ।[3]

यहां बदरु रज्जो पर झूठ-मूठ का गुस्साते हैं । क्योंकि असलियत में तो वे अब्बू पर गुस्सा दिखाते हैं ।

सामंती सामाजिक ढांचे में बच्चियों के साथ भेद-भाव बहुत बचपन से शुरू हो जाता है । वकील साहब भी बदरु और मासूमा के बीच फर्क करते हैं । बदरु चंचल है । दिल-दिमाग से वकील साहब के काफी नजदीक है । अत: वे बदरु की हर मांग को पूरा करने की भरसक कोशिश करते हैं । जब-जब वकील साहब महक के घर पर जाते हैं, तो बदरु चवन्नी लेने की ज़िद करते हैं और पा भी जाते हैं । पहली बार वकील साहब मासूमा को चवन्नी का सिक्का देते हैं । वह भी बदरु की सिफारिश पर ।

"मासूमा कुछ देर चुपचाप देखती रही । फिर अजीब सी खिंची आवाज में कहा - आपसे अब्बू हमें पहली बार मिल रहा है । इसके पहले तो आप ने हमें कभी दिया ही नहीं ।

- क्या आप ने मांगा ?

- नहीं, अब्बू ।

लड़की की आवाज में जाने क्या था हम अन्दर ही अन्दर सर्द पड़ गए । कुछ गलत नहीं कह रही मासूमा । अचरज भी हुआ, इसके पहले हमने बदरु के साथ साथ लड़की को भी क्यों नहीं दिया ।"[4]

यहां वाक्यों से एक प्रकार से निरीहता और पछतावे का भाव-बोध सही शब्दों के चयन से ही संभव हो सका है ।

चूंकि उपन्यास का अधिकांश हिस्सा संवाद शैली में है, अत: संवाद के माध्यम से ही चरित्रों के मनोभावों और दृष्टिकोणों का पता

चल पाता है । बीच-बीच में कृष्णा जी ने अपनी सार्थक टिप्पणी भी कर दी है । लेकिन उनकी पूरी कोशिश यही रहती है कि वे जहां तक संभव हो सकता है, स्वयं को दूर ही रखती है । अपने पात्रों के द्वारा बोले गए संवाद, स्वगत तथा इन पर अन्य पात्रों द्वारा की गयी प्रतिक्रिया के द्वारा ही उपन्यास की पूरी कथावस्तु गतिमान होती है । जैसे कंगन वापसी के मामले में । वकील साहब, उनकी बहन छुन्ना बीबी, धर्मपत्नी कुटुम्बप्यारी कंगन वापस लेने के लिए महक के पास जाते हैं । पहली बार महक और कुटुम्ब का आमना सामना होता है ।

'बच्चे उठ गए तो महक ने भरपूर आंखों से कुटुम्बप्यारी को देखा और अदा से कहा - आज यहां तक आने की क्यों कर गहमत उठाई ।

वकील साहब चुप रहे ।

दम्मो की हरकतपर हम बड़े शर्मिन्दा हैं । ऐसा न होना चाहिए था । क्या बतावें बच्चों में नाहक लड़ाई झगड़ा हो गया ।

महक ने गुम नजर से एक गर्म लपट वकील साहब तक पहुंचा कर ठण्डे गले से कहा - होने को तो बहुत कुछ नहीं होना चाहिए, पर हो जाता है । भला बताइए इसमें हम अपनी तरफ से क्या जोड़ें । पढ़ाए तोते की तरह कुटुम्बप्यारी ने माफी मांगी - दम्मो की बेवकूफी के लिए हम आप से माफी मांग लेते हैं । उसे साथ लिए आते पर यही अंदेशा रहा कि बच्चे हैं, कहीं फिर न उलझ जाएं ।'[5]

ठीक इसी अवसर पर वकील साहब एक प्रेमी की हैसियत से महक के गदराए सौन्दर्य पर अपनी निगाहें गढ़ा देते हैं । कृष्णा जी के शब्द हैं - 'आंखें महक के मुखड़े पर ऐसे गड़ा दीं, जैसे कहते हों - रंज मेरा तेरे चेहरे से नुमाया होता ।'[6]

इसकी प्रतिक्रिया महक पर कैसी होती है, वह भी -

'कुटुम्बप्यारी जैसे इस अहाते की हदबंदी के बाहर बैठी हो । मियां का चेहरा देख सोचा - क्या बेला गुलाब फूलने लगे इनके चेहरे पर । ऐसे

मर्दों को ऐसी औरतें ही अपने जाल में फंसाया करती हैं ।'[7]

चरित्रों के अन्तर्मन मन के स्थूल और सूक्ष्म भावों को ही नहीं बल्कि उनकी सूक्ष्म गतिविधियों का चित्रण भी शक्तिशाली भाषा से कर देना कृष्णा जी की अपनी ही विशेषता है --

'कलफ़ लगी चौड़े पाट की धोती पहने निकली और आइने के आमने-सामने खड़े-खड़े बालों में कंघा घुमाया, जुड़ा बांधा, माथे पर बिंदी लगाई, मांग में सिन्दूर भरा, कन्धों पर आंचल फहरा सिंगार-मेज़ के सामान को उलट-पलट करने लगी... कुटुम्ब ने आलमारी खोली, बंद की । चाबी का गुच्छा धोती की चुनटों पर खोंसा और वकील साहब के सामने कुर्सी पर आ बैठी ।'[8]

या फिर वकील साहब और महकबानो के बीच प्रेम की बहसें हों --

' - यह क्या जानम, हमारे जूतों के फीते खोल दिए । हमें आज हर हालत में वापस पहुंचना होगा ।

- लीजिए बांध देते हैं ।

आंखें महक के चेहरे पर रुकीं तो लगा सिर पर झूलते आंधी तूफान में कहीं यही सूरत तो गुम हो जाने को नहीं ।

महक ने छेड़ा - जाइए साहब आप अपनी ख्वाबगाह में ही जाइए ।

वकील साहब ने झुक कर जूते का तस्मा बांधा, फिर खोला, जैसे कुछ उलझा पड़ा हो । बानो को मकर से देखते पाया तो पूछा - क्यों ? कुछ खास बात है क्या ?

महक मुस्कुराई - कहती कि एक शख्स एक ही वक्त दो बिछौना के फर्ज कैसे निभा सकता है ।'[9]

कृष्णा जी ने कितनी खूबी के साथ जूते के तस्मे जैसे उपेक्षित वस्तु के माध्यम से सचमुच में महक और कुटुम्बप्यारी के बीच में कई स्तरों पर उलझे वकील कृपानारायण के आन्तरिक जगत को खोल कर रख दिया है ।

'दिलो-दानिश' की भाषा गद्य होते हुए भी पद्यात्मक सी लगती है ।काव्य-सा-जैसा आनंद भाषा में घुला-मिला है । भाषा की काव्यात्मकता केवल अप्रत्यक्ष रूप से अलंकारिक भाषा के माध्यम से ही नहीं व्यक्त हुई है, बल्कि उसमें जगह-जगह पर गीत, शेरों-शायरी का भी प्रयोग है । ये सब केवल भाषा के लक्षण ही नहीं हैं । वे बीसवीं शताब्दी की दिल्ली के प्रारम्भिक वर्षों में रचे-बसे थे । उर्दू-हिन्दी शब्दों का मिश्रित प्रयोग जो भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी के रूप में मशहूर है, उस समय हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों द्वारा सहज और सामान्य रूप से प्रयोग में लाया जा रहा था ।

'दिलो-दानिश' का अन्तिम भाग 'लाल बही के पन्ने से ' भाषा गठन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यह वकील कृपानारायण की वसीयत है जिसमें वे जिन्दगी और उसकी गति को लेकर दार्शनिक-सी की मुद्रा में आ गए हैं । जिन्दगी की पसरी हुई कठिनाइयां जो व्यक्ति की क्षमता से कोसों दूर होती हैं, अक्सर उसे दार्शनिक बना देती हैं ।

'हम जाने क्या-क्या करना चाहते हैं । पर कुछ कर सकने की मोहलत कहां बाकी है ।

मंज़िले-ऐश नहीं है ये - सराय-फानी
रात की रात ठहरते हैं ठहरने वाले ।

जो दुनिया इस घर में अपनी तौफीम से हमने बनाई, सजाई थी, उसी में हम मेहमान हैं । अपने आर-पार फैले उम्र के दोनों किनारों से हमले जिन्दगी की गूंज तकरा रही है ।

गौरी शंकर के घंटे-घड़ियाल बज रहे हैं - नुगदी के प्रसाद की तरह चंद रातें या कुछ घंटे और । जो आता है वही जाता भी । जन्म-मरण ।'[10]

अवसाद के क्षण में अन्तर्मुखी हो, व्यक्ति जिस तरह सोचता है, उसकी भाषा ऐसी ही हो सकती है । जीवन की अन्तिम घड़ियों में कृपानारायण चेतना शून्य होते जाते हैं । उनकी चेतना में उनके स्वर्गवासी पिता की आकृति उभरती है जो अपने पुत्र को अपने पास बुलाते हैं - 'चले आओ कृपा - - - आओ - - - आ जाओ - - । डरने की तो कोई बात ही नहीं । इस इलाके में कोई खलल और खराश नहीं । अमां यार, थोड़ी देर का ही अंधेरा है । बाद में तो खुले आसमान पर खूब जमेगी । बिरादरी के बहुतेरे पहुंचे पड़े हैं वहां । आओ - - । आओ - - - ।'[11] भाषा केवल जीवित लोगों की ही नहीं होती, बल्कि उनकी भी होती है जो जीवित नहीं होते । उनकी भाषा का रंग कैसा होगा, इसे कृष्णा जी की पारखी दृष्टि पकड़ने से चूकती नहीं ।

सालगिरह का अवसर ऐसा होता है जिसमें बच्चे वयस्क सभी गीत और शायरी में शिरकत करते हैं । सबसे आकर्षक गीत है । 'रीछ का बच्चा' जिसे छोटे सयाने सभी मिल कर गाते हैं --

'कल राह में जाते जो मिला रीछ का बच्चा
ले आए वही हम भी उठा रीछ का बच्चा
सौ नेअमतें खा-खा के पला रीछ का बच्चा
जिस वक्त बड़ा रीछ हुआ रीछ का बच्चा ।'[12]

उपरोक्त गीत में कोई विराम चिह्न नहीं है । क्योंकि बच्चे गीत गाने में मात्रा, लय को ध्यान नहीं देते । यह उनकी चिन्ता का विषय भी नहीं होता है । कृष्णा जी ने शायद इसी बात को ध्यान में रखा है ।

सबसे छोटे चुन्नू भी अपनी तोतली आवाज़ में गाना शुरू कर देते हैं -

'एक थी तो एक थी चिड़िया । एक था तो एक था चिड़ा । चिड़िया का घरवाला ।'[13] बच्चों की भाषा तोतली होती है । उसमें कभी-कभी जिन शब्दों को बाद में आना चाहिए, वे पहले आ जाते हैं । और फिर बाद में भी । इससे वाक्यों के शब्द आपस में लड़ते से लगते हैं ।

बच्चों की निश्चल और तोतली गीत के बाद कुटुम्बप्यारी अपना गजल प्रस्तुत करती है जिसमें गंभीरता और दु:ख की वेदना फलकती है । स्वभावत: यह सही भी है क्योंकि वह वकील साहब और महक बानो के सम्बन्धों से दु:खी है -

'बुत को बुत और खुदा को खुदा कहते हैं,
हम भी देखें तो उसे देख के क्या कहते हैं ।
जो भले हैं वो बुरों को भी भला कहते हैं,
न बुरा सुनते हैं अच्छे न बुरा कहते हैं ।'[14]

विभिन्न भावों से भरे गीतों, गजलों के अलावा गद्य की भाषा भी काव्यात्मकता से युक्त है । विशेषकर प्रेम या शृंगार जनित भावों को व्यक्त करने के प्रसंग में --

'वकील साहब ने कहे गए के पीछे फांकने की कोशिश की, फिर गैर-जरूरी समझ कर महक को ही आजू-बाजू से निहारने लगे । छज्जे वाली टीन की छत पर बारिश का पानी लगातार शोर करता रहा । मेंह के इस लबालब बहते हुए शोर को कृपानारायण अपने अन्दर सुनने लगे ।-तौबा । क्या आवाज है । बरसते पानी के तमाम उछाल जैसे जिस्म में आ उगे हों । मेंह है । शोर है । बरसात है । रात है । महक है । तेज हवाओं ने जैसे अंदर के झुरमुट को अपनी गिरफ्त में ले लिया हो ।'[15]

इसी प्रकार का दूसरा अत्यन्त आकर्षक प्रसंग —

'ड्योढ़ी को पार करते ही कृपानारायण जैसे इस हवेली की पुरानी ईंट बन गए। शाम का टुकड़ा फिसल कर जाने कहां गिरा। अपने कमरे की ओर बढ़ते हुए लगा सब कुछ सही सलामत है। कमरे की बत्ती जलती थी। आहट पा कुटुम्ब ने करवट ली। घंटे की ओर देखा और आंखों पर बाजू की ओट ली। रुसवाई। मियां-बीबी का बीच वाले फासले तो तय करने ही होंगे।'[16]

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिलो-दानिश में भरे पड़े हैं। जो गद्य में काव्य जैसा आनंद देते हैं।

कृष्णा जी की भाषा शैली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता, विशेष कर, दिलो दानिश में यह है कि यह अपने गठन और भाव दोनों से ही हिन्दुस्तानी संस्कृति की वाहक है। कम से कम उत्तरी भारत की मिश्रित संस्कृति की अभिव्यक्ति उसके माध्यम से होती है।

'दिलो-दानिश' आद्यन्त हिन्दी उर्दू के प्रचलित शब्दों, वाक्यों, वाक्य विन्यासों से पूर्ण है। पुरानी दिल्ली का क्षेत्र प्रारंभ से ही खड़ी बोली के निर्माण का क्षेत्र रहा है। प्रारंभिक चरण में खड़ी बोली में हिन्दी-उर्दू के शब्दों का खुल कर प्रयोग होता था। ये शब्द और मुहावरे ऐसे थे, जो आम बोलचाल की भाषा - बोली के अंग बन चुके थे। हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों के लोग इसे अपने दैनिक-जीवन के व्यवहार में लाते थे। उदाहरणार्थ :

'बिछौने की तीन-तन्हाई ऐसी टूटी कि जैसे मेरा जाम हाथ से छिटक कर फर्श पर जा गिरा हो। दिलों को फफूंदी ऐसे ही लगा करती है। बीवी होने की सभी अलामतें सलामतें एक साथ सिर पर सवार हैं। आए दिन वही। सिर्फ हमीं से नहीं। सास-ननद देवरानी - जेठानी सब से यही तेवर - कभी इस करवट, कभी उस। बरुआजी से

रुसवाई हो तो ताई जी से मुहब्बत जग जाती है । अवध की बीवी से बहनापा हो तो सरताज की घर वाली से वैर । कुन्ना का सुहाग जाता रहा, पर उससे भी यही शिकायत कि उसने बड़ा कमरा क्यों हथिया लिया । मुरारी पहले इनके खास चहेते थे, आजकल बोलचाल बंद है । कुनबों में साथ-साथ रहने के लिए तालीम हुआ करती है । इनका आवा ही दूसरा है । कपड़ा-गहना, बच्चे, नौकर-चाकर किसी चीज़ की कमी नहीं । पर यह है कि हर वक्त गुस्से में भुम्मा-भूम ।'[17]

इस तरह के सरल और सहज शब्दों के अलावा बहुत से शब्द ऐसे हैं जो आभिजात्य और पढ़े-लिखे परिवारों में बोले जाते थे -

'जिंदगी बड़ी दीदनी है । खुबरू और गंदुमगू । इसका हासिल मौत नहीं, हरकत और तब्दीली है जो कुदरत के जलवे से बसिल सिला - जारी रहती है । इस हवेली में धड़कती जिंदगी करीब-करीब उसी नक्शे-कदम पर चलती रही है, जिसे हमारे बुजुर्गों ने बनाया, चलाया था । दिन-त्यौहार, शादी-व्याह, जन्म-मरण के मौकों पर वही रीति-रस्म और नियम निभाए जाते रहे हैं ।'[18]

इस प्रकार पात्रों की अनुभूतियों को उनकी मनोदशा और बाह्य वातावरण के साथ दिलो-दानिश की भाषा पूरी तरह व्यक्त करने में सक्षम होती है । पात्रों के मनोभावों और प्रयोग किए गए शब्दों के बीच कोई अन्तराल नहीं रहता है । यही कृष्णा सोबती की भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है ।

संदर्भ

1. कृष्णा सोबती - दिलो-दानिश, पृ0 1
2. वही, पृ0 9
3. वही, पृ0 20-21
4. वही, पृ0 41
5. वही, पृ0 62
6. वही, पृ0 63
7. वही, पृ0 63
8. वही, पृ0 77
9. वही, पृ0 133-134
10. वही, पृ0 196-197
11. वही, पृ0 196
12. वही, पृ0 22
13. वही, पृ0 23
14. वही, पृ0 25
15. वही, पृ0 14
16. वही, पृ0 45
17. वही, पृ0 46
18. वही, पृ0 192

उपसंहार

स्त्री पुरुष संबंध सामाजिक जीवन प्रणाली का सर्वाधिम महत्वपूर्ण पक्ष है। स्त्री-पुरुष संबंधों की प्रकृति के आधार पर ही सामाजिक व पारिवारिक जीवन के विकास का स्वरूप निर्धारित होता है। स्त्री-पुरुष संबंध जहाँ एक तरफ सामाजिक जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित करता है, वहीं पर सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में होने वाला परिवर्तन भी स्त्री-पुरुष संबंधों को प्रभावित करता है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष के संबंध और सामाजिक जीवन के बीच में एक प्रकार का द्वन्द्वात्मक रिश्ता बनता है।

यह महत्वपूर्ण है कि स्त्री-पुरुष संबंध निरन्तर परिवर्तित और विकसित होता रहा है। आर्थिक और सांस्कृतिक कारण इस संबंध को निर्णायक ढंग से प्रभावित करते हैं। बीसवीं शताब्दी में राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों मे युगान्तकारी परिवर्तन घटित हुए। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से पारिवारिक ढाँचे में स्त्री-पुरुष संबंधों को नियमित और निर्धारित करने वाला नैतिक प्रतिमान भी परिवर्तित हुआ। प्रेम, सेक्स, विवाह विवाहेत्तर प्रेम आदि से संबंधित पुराने मूल्य बदल गए।

भौतिक जगत में आया यह परिवर्तन संवेदना के स्तर पर साहित्य से भी दिखाई पड़ा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री-पुरुष संबंधों के परिवर्तित दृष्टिकोण का साहित्य में वर्णन भारतेन्दु युग से शुरू होता है। यह नयी चेतना थी जो सामाजिक नवजागरण के दबाव से उत्पन्न हुई थी। यह चेतना छायावाद के दौर (1920-36 ई॰) में और अधिक बलवती हो गयी। जिसका स्पष्ट प्रभाव महादेवी कृत श्रृंखला की कड़ियाँ है। सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", पंत, जयशंकर प्रसाद की कविताओं,

कहानियों, आलोचनाओं आदि में परिवर्तित नारी दृष्टिकोण का स्पष्ट वर्णन मिलता है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले और बाद में भी स्त्री-पुरूष संबंधों को लेकर निरंतर रचनाएँ की जाती रही । पुरूष और महिला रचनाकारों के लेखन से यह प्रधान-विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया । पुरूष रचनाकारों ने निश्चय ही नारी लेखन को नई दिशा दी, किन्तु पुरूष होने के कारण उनकी दृष्टि उतनी बेबाक और तेवरपूर्ण नहीं हो सकी है जितनी कि महिला रचनाकारों की । वस्तुतः महिला रचनाकारों की कृतियों में उनका भोगा हुआ यथार्थ वर्णित होता है जबकि पुरूष रचनाकार उसे संवेदना और सहानुभूति के बल पर अपनी रचना में अवतरित करता है ।

महिला रचनाकारों में कृष्णा सोबती का अपना अलग महत्व है । उन्होंने नारी जीवन को सामाजिक सन्दर्भों, संस्थाओं और मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में रखकर, अपनी रचनाशीलता को अन्यों से विशिष्ट बनाया है । अधिकांशतः नारी रचनाकारों ने पुरूष को स्त्री की सारी परेशानियों का कारण बताकर पुरूष के विरोध में अपने-अपने नारी चरित्रों का गठन किया है । साथ ही सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन के पहलू और प्रश्न ही उनके नारी पात्रों के प्रमुख उपजीव्य बनते हैं । जबकि कृष्णा सोबती के लिए स्त्री-पुरूष संबंधों की सबसे मजबूत नियामक ईकाई "सेक्स" है, जो उनके नारी पात्रों के पुरूषों के प्रति दृष्टिकोण निर्मित करने का प्रमुख आधार का कार्य भी करता है । सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कृष्णा सोबती के नारी पात्र पुरूष पात्रों के प्रति गहरे प्रेम से जुड़े रहते हैं और उनकी प्रमुख मांग भी यही प्रेम ही होता है । नारी पात्र पुरूषों के संसर्ग में आकर अपने सामाजिक अस्तित्व की खोज करते हैं । इसीलिए कहीं भी उनमें पुरूषों के प्रति कोई विरोध-भाव खुले रूप में नहीं मिलता है । इसके अलावा जो महत्वपूर्ण बात कृष्णा सोबती के लेखन में दिखायी पड़ती

है वह स्त्री के व्यक्तित्व का निरन्तर विकसित और परिवर्तित होता रूप । "डार से बिछुड़ी" की पाशो जहाँ अत्यन्त कमजोर लगती है, और जिसका व्यक्तित्व व्यक्तित्व न होकर केवल एक वस्तु लगता है, वहीं पर "मित्रो मरजानी" की मित्रो अपने बेबाकपन, खुलेपन और बहुत कुछ दु:साहस के कारण, रचना और वास्तविक जीवन, दोनों में एक चुनौती के रूप में सामने आती है ।

देखा जाय तो स्त्री-पुरुष संबंधों की इस विशिष्टता की दृष्टि से दिलो-दानिश उपन्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमे स्त्री-पुरुष संबंधों के दो स्वरूप मिलते हैं - पति और रखैल के रूप में; पति और पत्नी के रूप में । वकील कृपानारायण का नारी दृष्टिकोण पूरी तरह सामंतवादी है । एक तरफ वे अपनी रखैल महकबानो से प्रेम करते हैं तो दूसरी तरफ अपनी पत्नी कुटुम्बप्यारी से । कृपानारायण, कुटुम्बप्यारी और महकबानों के संबंधों के स्तर पर सन्तुलन बनाए रखना चाहते हैं । किन्तु वे इस उद्देश्य में असफल होते हैं । कुटुम्बप्यारी अपनी सौत को सहन नहीं कर पाती । उसके अन्दर ईर्ष्या और अवसाद का भाव इतना गहरा हो जाता है कि वह आत्महत्या तक करने की कोशिश करती है । प्रेम की गहराई की दृष्टि से देखा जाय तो कृपानारायण, महकबानों से कुटुम्बप्यारी की तुलना ज्यादा प्यार करते हैं । ऐसा स्वाभाविक भी है । कुटुम्बप्यारी के साथ अपने संबंधों में वे सामाजिक मान-मर्यादा और पारिवारिक उत्तरदायित्व से ज्यादा जुड़े हैं । जबकि महक के साथ ऐसा कुछ भी नहीं है । लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि कृपा नारायण सामाजिक मर्यादा के नाम पर अपनी पत्नी कुटुम्ब प्यारी का ही साथ देते हैं । वस्तुत: वे यहाँ पर रखैल और पत्नी के बीच स्पष्ट रूप में भेद करते हैं ।

पति-पत्नी और रखैल का त्रिकोणात्मक संबंध किसी तरह संतुलन की ओर पर सधा रहता है । लेकिन दूसरी पीढ़ी सामंजस्य स्थापित करने

में असफल रहती है । "बदरू" को मुसलमानी का बच्चा कहकर दम्मो न केवल उसका अपमान करता है बल्कि उसे थप्पड़ भी मारता है । बदरू इसकी बड़ी जोर से प्रतिक्रिया करते हैं ।

उपरोक्त जटिल और तनावपूर्ण सामाजिक ताने-बाने को व्यक्त करने के लिए कृष्णा सोबती ने दिलो-दानिश की भाषा को अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है । उनकी भाषा चरित्रों के अन्तर्मन को व्यक्त करने में पूरी तरह सक्षम है । सहज और चुहेलेपन से परिपूर्ण भाषा मुख्यत: संवाद शैली में गठित है । जिसकी मुख्य विशेषता है कि पाठक गद्य पढ़ते हुए भी कविता सा आनंद पाता है । भाषा में यह काव्य-माधुर्य हिन्दुस्तानी शब्दों के प्रयोग के कारण है जिसमें उर्दू और खड़ी बोली, सहज लोकप्रिय शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है । जिससे उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों का भारतीय समाज जीवंत हो उठा है ।

.....

ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

कृष्णा सोबती के उपन्यास

- डार से बिछुड़ी
  राजकमल, नई दिल्ली
- मित्रो मरजानी
  राजकमल, नई दिल्ली
- सूरजमुखी अन्धेरे के
  राजकमल, नई दिल्ली
- जिन्दगीनामा
  राजकमल, नई दिल्ली
- ऐ लड़की (लघु उपन्यास)
  राजकमल, नई दिल्ली
- दिलो-दानिश
  राजकमल, नई दिल्ली

कहानियां -

सिक्का बदल गया
बादलों के घेरे
तिन पहाड़
यारों के यार आदि

सन्दर्भ ग्रन्थ

त्रिभुवन सिंह	:	हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
चन्द्रकांत बांदिवडेकर	:	उपन्यास स्थिति और गति पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
विजयमोहन सिंह	:	कथा समय राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
विवेकी राय	:	समकालीन हिन्दी उपन्यास राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद
नेमिचन्द्र जैन	:	अधूरे साक्षात्कार वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
डा. प्रेम कुमार	:	समकालीन हिन्दी उपन्यास (कथ्य विश्लेषण) इन्द्र प्रकाशन, अलीगढ़
डा. भगीरथ बड़ोले	:	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के मानव-मूल्य और उपलब्धियां स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद
डा. शंकरलाल जायसवाल	:	हिन्दी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद
शमशेर सिंह नरूला	:	उपन्यास सृजन की समस्याएं लोक भारती, इलाहाबाद
बिन्दु अग्रवाल	:	हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
बिन्दु भट्ट	:	अद्यतन हिन्दी उपन्यास पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद

डा. वीरेन्द्र कुमार : हिन्दी उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना
संजय प्रकाशन, दिल्ली

दामा गोस्वामी : नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास
जयश्री प्रकाशन, दिल्ली

नवल किशोर : आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता
प्रकाशन संस्थान, दिल्ली

सुनंत कौर : समकालीन हिन्दी कहानी : स्त्री-पुरुष सम्बन्ध
अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली

गोपाल राय : गोदान : नया परिप्रेक्ष्य
अनुपम प्रकाशन, पटना

डा. दिनेश प्रसाद सिंह : प्रेमचंद - विविध आयाम
अनुपम प्रकाशन, पटना

डा. उर्मिला भटनागर : हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण
अर्चना प्रकाशन, कोटा

डा. रजनी कांत एस.शाह : हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना
संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद

अन्य सहायक ग्रन्थ

सुमित सरकार : आधुनिक भारत
मैकमिलन, दिल्ली

विपनचन्द्र और अन्य : भारत का स्वतन्त्रता ~~के लिए~~ संघर्ष
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, दिल्ली
विश्वविधालय, दिल्ली

डा. चन्द्रमोहन अग्रवाल : भारतीय नारी : विविध आयाम

डा. राजकिशोर (सं०) : स्त्री के लिए जगह
वाणी प्रकाशन, दिल्ली

डा. सुरेन्द्र वर्मा : भारतीय जीवन मूल्य
पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

सिमोन द बउवार : स्त्री उपेक्षिता (सेकेण्ड सेक्स)
का हिन्दी अनुवाद - प्रभा खेतान
दिल्ली

पत्र-पत्रिकाएं

भाषा
आजकल
हंस
वर्तमान साहित्य
साक्षात्कार
वागर्थ
इन्द्रप्रस्थ भारती
समकालीन भारतीय साहित्य
कथा समय
दस्तावेज
मानुषी (अंग्रेजी)